सन्मति साहित्य रत्न-माला का ८३वां रत्न

कुछ सुनी कुछ देखी

लेखक
पं० मुनि श्री लाभचन्द्र जी महाराज

सम्पादक
आर० डी० शर्मा "प्रभाकर", सी० एल० एस-सी०

प्रकाशक
सन्मति ज्ञानपीठ (लोहामंडी) आगरा

लेखक
मुनि श्री लाभचन्द्र जी महाराज

सम्पादक
श्री आर टी शर्मा

प्रथम संस्करण
सन् १९६३

मूल्य
दो रुपये

मुद्रक
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस राजामंडी आगरा

प्रकाशकीय

ग्राज का मानव ग्रहम् ग्रौर ग्रज्ञान के ग्रधकार मे भटक रहा है ग्रौर जितना वह सभ्य एव शिक्षित होने का दम भरता है, उतना ही वह सकीर्णता के घेरे मे फँसता जा रहा है। उन्नति के नाम पर स्वय पतन एव विनाश के साधन तीव्र-गति से जुटा रहा है।

ऐसी स्थिति मे प्रस्तुत पुस्तक कुछ मार्ग-दर्शन कर सकी तो लेखक एव प्रकाशक का श्रम सफल समझा जाएगा। पाठक यदि भाव-गाम्भीर्य पर ध्यान देंगे, तो ये छोटे-छोटे दृष्टान्त एव लघु कथाएँ एक मशाल का काम देंगी ग्रौर जन-मानस मे फैले तिमिर को दिव्य-प्रकाश मे बदलने के लिए पग-पग पर सहायक होगी।

प्रस्तुत पुस्तक की भाषा ग्रौर शैली सरल, सरस एव सुबोध हो, इसका विशेष ध्यान रखा गया है, जिससे कि प्रत्येक साधारण पाठक भी इससे उपयुक्त लाभ प्राप्त कर सकें।

सोनाराम जैन
मत्री
सन्मति ज्ञानपीठ लोहामडी, ग्रागरा

सम्पादकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'कुछ सुनी कुछ देखी' में संकलित दृष्टान्तों एवं लघु-कथाओं का संग्रह मुनि श्री मानचन्दजी के ही सुत्त्य परिश्रम का फल है कि जिन्होंने महान खोज एवं लगन के साथ इनको एकत्र कर प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किया। यह भी ऐसी स्थिति में जब कि मानव के पास मानवता के सम्बन्ध में विचार करने के लिए समय भी नहीं है और पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, अध्यापक-छात्र मालिक-मजदूर आपस में अपने-अपने स्वार्थ के लिए एक-दूसरे से टकरा रहे हैं। विज्ञान के इस युग में धन-दौलत की चाह में उचित एवं अनुचित का विचार किए बिना इन्सान भौतिकता की सड़क पर दौड़ लगा रहा है और प्रतिक्षण अपने स्वार्थ से लाभ निकालने की चेष्टा कर रहा है।

ऐसी स्थिति में मुनि श्री जी के ये लघु एवं प्रेरणा-प्रद दृष्टान्त मानव को एक नई दिशा में कदम बढ़ाने के लिए प्रेरित करेंगे और यदि स्पष्ट शब्दों में कहूँ तो किसी हद तक प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में भाषा पर विशेष ध्यान न देकर केवल भाव पर ही ध्यान दिया गया है इसलिए पाठकों से प्रार्थना है कि वे भाषा को छोड़ कर भाव पर अधिक ध्यान दें जिससे कि वे समुद्र में से मोती निकालने में सफल हो सकें और इस पुस्तक से समुचित लाभ उठा सकें।

पुस्तक के सम्बन्ध में पाठकों की ओर से जो भी उपयोगी सुझाव प्राप्त होंगे उनका सहर्ष स्वागत किया जाएगा और आगामी संस्करण में समुचित संशोधन करना भी सम्भव हो सकेगा।

—सम्पादक

संक्षिप्त जीवन-झाँकी

हमेशा के लिए जिन्दा वही इस दौरे फानी मे।
मेहर बनकर अजब चमके जो अपनी जिन्दगानी मे ।।

जन्म

श्रद्धेय प० मुनि श्री लाभचन्द्र जी महाराज का जन्म सवत् १६८१ मे हुआ था। आपके पिता का नाम नाथूलाल व माता का नाम प्यारी बाई था।

आपके हृदय मे बाल्यावस्था से ही धार्मिक विचार अकुरित होने लगे थे और दिन-प्रतिदिन आपका ध्यान धार्मिक कृत्यो की ओर बढता ही चला गया।

साढे आठ वर्ष की आयु मे ही आप स्थविरपद विभूपित पडित रत्न नदलाल जी महाराज की सेवा मे पधारे, जब कि वे रतलाम (मध्य भारत) मे विराजमान थे। पूज्य श्री खूबचन्द्र जी महाराज भी उस समय वही पर थे। दस वर्ष की आयु मे ही गुरुदेव की सेवा मे रहकर आपने अध्ययन कार्य प्रारम्भ कर दिया।

दीक्षा

मुनि श्री जी की दीक्षा सवत् १६६२ मे जैन दिवाकर प० मुनि श्री चौथमल जी महाराज ठाणा २७ की उपस्थिति मे हुई और आपके साथ एक भाई तथा दो बहने भी दीक्षित हुए थे। आपने श्रद्धेय श्री खूबचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य प० मुनि श्री हजारीमल जी महाराज को अपना दीक्षा-गुरु स्वीकार किया।

अध्ययन

आपने हिन्दी संस्कृत प्राकृत उर्दू आदि अनेक भारतीय भाषाओं तथा जैन-शास्त्रों का समुचित रूप से अध्ययन किया और अपने इस संचित ज्ञान से समाज को यथाशक्ति लाभान्वित किया है।

प्रदेश-विहार

आपने मालवा मेवाड़ मारवाड़ गुजरात काठियावाड़ पंजाब उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश बंगाल बिहार, विन्ध्य-प्रदेश आन्ध्र-प्रदेश मैसूर कर्णाटक और मद्रास आदि विभिन्न प्रदेशों में विस्तृत विहार किया और वहाँ की जनता को अपने सदुपदेशों से पर्याप्त धर्म लाभ प्रदान किया और उनको सन्मार्ग पर बढ़ चलने के लिए प्रेरित किया है।

अन्य महत्वपूर्ण कार्य

आप पं मुनि श्री प्रतापमल जी महाराज तथा पं मुनि श्री हीरालाल जी के साथ सन् १९५६ में चतुर्मास के पश्चात् कलकत्ता पधारे। वहाँ दिनांक १६-१२-५६ से मारवाड़ी सम्मेलन प्रारम्भ हो रहा था जिसमें लगभग ८ हजार मारवाड़ी भाई एकत्रित हुए थे।

सम्मेलन के अध्यक्ष एवं जनता द्वारा विनती करने पर मुनि श्री जी ने वहाँ पर गो-रक्षा एवं जैन-धर्म' विषय पर प्रभाव शाली प्रवचन किया। वहाँ उपस्थित जनता पर मुनि श्री जी के इस प्रवचन का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और सब ने मुनि श्री जी की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की।

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व बंगाल और बिहार में भगवान् महावीर स्वामी ने यात्रा की थी और जनता में धर्म-

प्रचार किया था। महावीर स्वामी के उक्त उपदेश से एक लाख उनसठ हजार व्यक्तियो ने सहर्ष जैन-धर्म स्वीकार किया था।

आठवी शताब्दी मे वैदिक धर्म के प्रचारक श्री शकराचार्य ने वौद्ध धर्म को गम्भीर क्षति पहुँचाई और जैन-धर्म मे भी हस्तक्षेप किया। जैनाचार्यों की विद्वत्ता एव विवेकपूर्ण वुद्धि के कारण सौभाग्य से जैन-धर्म को कोई क्षति नही पहुँची। फिर भी उत्तर-प्रदेश तथा नैपाल मे वहुत से श्रावक वैष्णव हो गए और 'श्रावक' शब्द का अपभ्रश होकर 'सराक' शब्द रह गया। वगाल, विहार और उडीसा मे इन 'सराक' भाइयो की सख्या एक लाख से भी अधिक है। ये लोग अव भी मांस-मदिरा एव प्याज-लहसुन आदि का प्रयोग नही करते हैं। मुनि श्री जी ने अनेक गांवो मे जाकर 'सराक' भाइयो को जैन-धर्म का सदेश सुनाया और उन लोगो पर महाराज श्री जी के महत्वपूर्ण प्रवचनो का लाभप्रद प्रभाव पडा।

विहार के राज्यपाल को उपदेश

सन् १९५६ मे झरिया का चतुर्मास समाप्त कर मुनि श्री जी पटना होते हुए दाणापुर पधारे। वहां पर महाराज श्री जी श्री लक्ष्मनदास निर्मल कुमार (प्राइवेट लिमटेट) के गोदाम मे विराजे थे।

विहार प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री आर० आर० दिवाकर मुनि श्री जी के आगमन की सूचना पाकर दर्शनार्थ पधारे। मुनि श्री जी से अहिंसा और सगठन आदि विषयो पर लगभग एक घटे तक वार्तालाप किया। साथ ही महाराज श्री से भगवान् महावीर स्वामी के जन्म-स्थान—वैशाली मे पधारने का आग्रह भी किया।

वैशाली में महावीर जयन्ती

राज्यपाल एवं वैशाली संघ की अत्यन्त भावपूर्ण विनती को मुनि श्री जी ने स्वीकार किया और वहाँ पधारे। वहाँ पर पिछले १५ वर्षों से बिहार राज्य की ओर से महावीर जयन्ती मनाई जाती है और इस जयन्ती-समारोह में ही भाग लेने के लिए निकट के स्थानों से लगभग दो लाख व्यक्ति एकत्रित हुए थे। मुनि श्री जी ने "भगवान् महावीर की विश्व को देन" विषय पर प्रवचन किया और राज्यपाल महोदय ने भी अहिंसा के सम्बन्ध में भाषण दिया।

वैशाली के निकट हिंसा को रोकना

वैशाली के निकट ही लगभग तीन मील की दूरी पर वासुकुण्ड गाँव में जहाँ कि भगवान् महावीर का जन्म हुआ था प्रथम राष्ट्रपति स्वर्गीय डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने स्मृति-चिह्न के रूप में एक बहुत बड़ी शिला स्थापित कर दी है। उसके निकट ही एक देवी का मन्दिर है जहाँ प्रति वर्ष नवरात्रि के अवसर पर लगभग डेढ़ हजार बकरे कटते हैं। मुनि श्री जी ने इस हिंसा-कार्य को रोकने के लिए गाँव-गाँव में विहार किया और जनता को अहिंसा का उद्देश्य समझाया। मुनि श्री जी के उपदेश से प्रभावित होकर वहाँ की जनता ने भविष्य में पशु-बलि को त्यागने का आश्वासन दिया।

प्राकृत जैन विद्यापीठ में

महाराज श्री जी वैशाली से मुजफ्फरपुर पधारे। विद्यापीठ में एम. ए. के विद्यार्थी प्राकृत भाषा का अध्ययन करते हैं। मुनि श्री जी ने वहाँ पर 'महावीर का अनेकान्तवाद' विषय पर सुन्दर प्रवचन किया।

नैपाल की विहार-यात्रा

मुनि श्री जी मुजफ्फपुर से सितामढी पधारे और वहाँ से छ मील का भयङ्कर जगली रास्ता पार कर वीरगज पधारे। यह नैपाल का एक बहुत वडा शहर है। यहाँ से नैपाल की राजधानी काठमांडू पधारे।

बुद्ध-जयन्ती पर अहिंसा का सदेश

काठमांडू मे भगवान् बुद्ध की २५०१ वीं जयन्ती के अवसर पर अहिंसा का दिग्दर्शन कराया और वहाँ की जनता को अपने सुन्दर प्रवचन से बहुत ही प्रभावित किया। १५०० वर्ष के लम्बे समय मे स्थानकवासियो मे मुनि श्री जी ऐसे सत है जो कि प्रथम वार नैपाल पधारे और वहाँ धर्म-सदेश दिया।

नैपाल मे अहिंसा सम्मेलन

महाराज श्री जी की प्रेरणा से दि०-१८-६-५७ को अहिंसा सम्मेलन बुलाया गया। जिसमे जैन, बौद्ध और वेदान्तियो की ओर से अनेक प्रतिनिधियो ने भाग लिया। नैपाल के हिन्दी व नैपाली समाचार-पत्रो ने सम्मेलन की सफलता की बहुत ही प्रशंसा की है। यह सम्मेलन नैपाल के इतिहास म अपने प्रकार का सर्वप्रथम था।

प्रधानमत्री से चर्चा

नैपाल के प्रधान मत्री श्री टंकप्रसाद आचार्य, मुनि श्री जी के दर्शनार्थ आए और विनती करके महाराज श्री को अपने निवास-स्थान पर ले गए, जहाँ पर चर्चा-वार्ता हुई।

नैपाल नरेश को उपदेश

दि० २५-६- १ को नैपाल के वर्तमान महाराज महेन्द्र को "विश्व को जैन-धर्म की देन" विपय पर सन्देश सुनाया, जिससे वे वहुत ही प्रभावित हुए।

विषय | पृष्ठ

विषय		पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय — पृष्ठ

कुछ सुनी कुछ देखी

जीवन क्या है ? परस्पर विरोधी तूफानों का बवंडर । जो
इस संघर्ष में खड़ा रहा, आगे बढ़ता रहा और
कहीं भूला-भटका नहीं वही वीर है—
बाकी तो भीरु है ।

—उपाध्याय अमरमुनि

१

प्रण और प्राण

कीथ्स नामक एक ईसाई अधिकारी को किसी भीषण अपराध के फलस्वरूप टर्की देश मे मृत्यु-दण्ड की आज्ञा हुई, परन्तु इतना आश्वासन दिया गया कि यदि वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले, तो वह सुख-सुविधा पूर्वक देश मे रह सकता है।

कीथ्स के सामने अब दो मार्ग थे—एक तो यह कि वह धर्म परिवर्तन कर ले, और दूसरा यह कि वह देश से पलायन कर जाय—फिर चाहे वह भूख-प्यास से मृत्यु को ही क्यो न प्राप्त हो जाये। 'मृत्यु' और 'धर्म' इन दो मे से उसे एक मार्ग को चुनना था।

जब कीथ्स से इस सम्बन्ध मे पूछा गया, तो उसने उत्तर दिया—"मृत्यु और धर्म—इन दोनो मे से चुनने के लिये न मुझे कुछ समय की आवश्यकता है और न विचार करने की।"

'मृत्यु एक-न-एक दिन होगी ही क्योंकि जन्म के बाद मृत्यु-यह कुदरत का अटल सिद्धान्त है फिर धर्म-परिवर्तन भी क्यों करू ? हाँ धर्म-परिवर्तन से यदि मृत्यु न होने की तनिक भी सम्भावना होती तो इस पर कुछ विचार भी करने की आवश्यकता होती। अब मुझे कुछ भी विचार नहीं करना है। मृत्यु निश्चय है—यह विचार मेरे मन में प्रारम्भ से ही रहा है और इसी कारण से इतने उच्च पद रहकर भी मैंने अपनी सन्तान के लिये विरासत के रूप में कुछ भी नहीं छोड़ा है।

"अंत समय में मेरे नाम को कलंक लगे और मैं बल-पूर्वक धर्म-परिवर्तन करके देश में रहूँ—यह सर्वथा असम्भव है; इसलिये मैंने सहर्ष मृत्यु को ही स्वीकार करना अच्छा समझा है।

"यद्यपि मैं इस संसार से खाली हाथ बिदा ले रहा हूँ परन्तु धर्म-परिवर्तन से मैंने अपनी आत्मा का हनन नहीं किया—इसका मुझे अपार हर्ष है। मेरे हाथ खाली भले ही हों परन्तु वे साफ है और निष्कलंक हैं—ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।"

संसार के महान् व्यक्तियों का यही सिद्धान्त रहा है—

प्राण जाए, पर वचन न जाए।

२

चिन्ता और चिता

एक वृद्ध व्यक्ति तांगा चलाया करता था और उसमे उसे जो भी आय होती उसी से वह अपना जीवन-निर्वाह करता था।

एक दिन वह तांगा लिये चला जा रहा था और प्रसन्न मन से कुछ गुनगुनाता भी जा रहा था।

मार्ग मे एक सेठ जी थैला लिये हुए तांगे की प्रतीक्षा मे खडे थे। तांगे वाले ने लाला जी से गन्तव्य स्थान के सम्बन्ध मे पूछ कर तांगे मे बैठा लिया और उनका सामान भी स्वयम् लेकर तांगे मे रख लिया।

लाला जी बोले—"भाई, अब शरीर काम नही देता है, क्योकि उम्र सत्तर वर्ष मे ऊपर हो गई है।"

सुनकर तांगे वाले को बडा आश्चर्य हुआ और बोला—"बस, लाला जी—आपकी उम्र तो सत्तर के आस-पास ही है? चार

उमर पस्सी वर्ष का तो मैं ही तांगा चला रहा हूं और इस अवस्था में भी दो मन की बोरी सर पर रखकर दौड़ सकता हूं।"

लाला जी कुछ गम्भीर स्वर में बोले—"भाई इस्माल को चिन्ता और सांसारिक झंझट भी शीघ्र ही बूढ़ा बना देती है। क्या बतलाऊँ, चालीस वर्ष का लड़का गुजर गया है और छोटे छोटे बच्चे पीछे छोड़ गया है। इसके अतिरिक्त दो लड़कियों की शादी करनी है और दो छोटे बच्चों की देख-भाल भी करनी पड़ती है।"

तांगे वाला बोला—"लाला जी इसमें घबराने और चिन्ता करने की ऐसी क्या बात है! जो होना था वह हो गया और जो होना बाकी है वह आगे होगा।"

"लाला जी मुझे देखिये ! मेरे एक दर्जन बच्चे हैं। दिन-भर के परिश्रम के पश्चात् जो भी मिल जाता है उसी से गुजर करता हूँ और मस्ती से खा-पीकर रात को बिना किसी चिन्ता-फिक्र के पैर फैलाकर सोता हूँ।

"बच्चे पैदा हुए हैं तो बड़े भी होंगे फिर उनकी चिन्ता क्या करनी है। मैं इतना जरूर जानता हूँ कि मेरी मृत्यु के बाद मेरे बच्चे भूखे नहीं रहेंगे। किसी न किसी प्रकार पेट पालन कर ही लेंगे।

"मैंने चिन्ता को अपने पास से दूर भगा दिया है और वह मेरे पास तक नहीं फटकती है। यदि मैं चिन्ता करता तो अपनी इस थोड़ी मजदूरी से आनन्द का जीवन नहीं बिता सकता था और तन्दुरुस्ती भी मेरी ऐसी न होती जैसी कि आज है।"

"इसलिए लाला जी मेरी तो यही नेक सलाह है कि आप अधिक चिन्ता के चक्कर में न पड़ें—क्योंकि कार्य तो होता है

ने से ही, चिन्ता करने से तो कुछ बनता नही है। फिर व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ ?"

"हाँ, चिन्ता मानव को चिता की ओर अवश्य ही तीव्र गति बढाती है।"

कवि क्या कह रहा है —

"दुनियाँ है यह मुसाफिर खाना, लगा यहाँ पर आना-जाना।
कोई भी यहाँ टिक के रहा ना, सिर पर गूँजे काल तराना॥"

●●
●

३

प्रामाणिकता का फल

एक बार रिचर्ड जेमसन को राजद्रोह में सम्मिलित होने के संदेह में गिरफ्तार किया गया और जेल की एक कठोर कारावास में रखा गया।

रिचर्ड जेमसन अपनी प्रामाणिकता के कारण शीघ्र ही कारावास के अधिकारियों का विश्वास-पात्र बन गया। यहाँ तक कि उसे ऐसा भी अवसर मिला कि यदि वह वहाँ से भागना चाहता तो भाग भी सकता था परन्तु उसकी सत्य-निष्ठा एवं कर्त्तव्य-परायणता ने उसे ऐसा करने से मना किया।

जेमसन को कारावास से बाहर काम करने की भी आज्ञा मिल गई थी और वह नियमानुसार दिन भर कार्य करने के पश्चात् शाम को निश्चित समय पर लौटकर कारावास में आ जाता था। उसने आठ महीने तक यही क्रम रखा परन्तु अपने कार्य के द्वारा अल्प मात्रा में भी अधिकारियों को किसी प्रकार के संदेह का अवसर नहीं दिया।

जव उसे न्यायालय मे ले जाने का अवसर आया तो जेक्सन ने विश्वास दिलाया कि वह स्वयम् न्यायालय मे उपस्थित हो जायेगा, किसी को भी उसके साथ जाने की आवश्यकता नही है। अविकारियो ने भी उसे अकेला जाने की अनुमति दे दी।

जेक्सन अकेला ही न्यायालय की ओर चल दिया। मार्ग मे उसे परिचित व्यक्ति भी मिले और उन्होंने जव जेक्सन से यह पूछा कि वह कहाँ जा रहा है, तो उसने विना सकोच के और हिचकिचाहट के स्पष्ट कह दिया कि वह मृत्यु-दण्ड स्वीकार करने के लिये जा रहा है।

जेक्सन पर राजद्रोह का अभियोग सत्य निकला और फल-स्वरूप उसे मृत्यु-दण्ड मिला।

न्यायालय के फैसले के वाद तुरन्त ही मृत्यु-दण्ड न देकर, दण्ड-विवान के अनुसार जेक्सन को जीवन-रक्षा के अन्तिम उपाय—अर्थात् 'मर्सी' की प्रार्थना का सुअवसर प्रदान किया गया, जिसके फलस्वरूप 'मर्सी' की प्रार्थना प्रेसीडेन्ट की सेवा मे प्रस्तुत की गई।

प्रेसीडेन्ट के सामने जव जेक्सन के मृत्यु-दण्ड का प्रश्न आया, तो उसने उसके चरित्र के सम्वन्व मे जानकारी प्राप्त की। चरित्र-रिपोर्ट के अनुसार प्रेसीडेन्ट को जेक्सन का चरित्र वहुत ही अच्छा प्रतीत हुआ और जन-सावारण की राय भी जेक्सन को मृत्यु-दण्ड से मुक्त करने के ही पक्ष मे थी।

प्रेसीडेन्ट अभियुक्त जेक्शन के शुद्ध आचरण, उच्च चरित्र एव प्रामाणिकता से वहुत ही प्रभावित हुआ और साथ मे जनता-जनार्दन की भावना का भी आदर करके जेक्सन को मृत्यु-दण्ड से मुक्त कर दिया।

"धन्य हैं ऐसी विभूतियों को जो संसार में मानव-जन्म लेकर, हजार-हजार व्यक्तियों का शुभाशीष प्राप्त करती हैं और अपने आदर्श चरित्र से जन-साधारण को एक उच्च कर्तव्य का प्रकाश-स्तम्भ दिखा कर—सदा के लिये उनको आलोकित करके इस असार संसार से प्रयाण कर जाती हैं।"

कवि ने भी कहा है —

ओ मानव ! तूने मानवता का कुछ भी किया सुधार नहीं।
जीवन सफल किया तू ! फिर भी कुछ सीखा सार नहीं।।"

●●
●

४
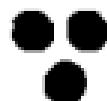
महान् साधना

भर्तृहरि को ससार असार लगा और इसी कारण से उसने राज-पाट को त्याग कर वैराग्य का मार्ग अपनाया, जिससे कि सासारिक झझटो एव प्रलोभनो से दूर रहकर जीवन सफलता की ओर अग्रसर हो सके ।

एक वार ऐसा प्रसग आया कि भर्तृहरि को लगातार पाँच दिन तक भोजन नही प्राप्त हुआ । परन्तु ऐसी कठिन परिस्थिति मे भी उसने दीनता धारण नही की । पाँच दिन तक भूख की ज्वाला को शान्त रखा, परन्तु इसके पश्चात् जब भूख से बहुत व्याकुलता बढ गई, तो वह श्मशान भूमि मे गये और देखा कि वहाँ पर एक शव जल रहा है और उसके पास ही आटे के तीन पिण्ड पडे हुए हैं । आटे के पिण्ड देखकर उनका धैर्य टूट गया और भर्तृहरि के मन मे विचार आया कि भूख शान्त करने के लिये इन तीनो पिण्डो को चिता की अग्नि मे तपाकर वाटी बना

कर खा लिया जाए। ऐसा सोचकर उन्होंने आटे के तीनों पिण्डों को सेकने के लिए प्रज्वलित अग्नि में डाल दिया और स्वयं पास में बैठ गए।

उसी समय भगवान् शंकर और पार्वती ने उनको इस स्थिति में देखा तो भगवान् शंकर भर्तृहरि से हाथ जोड़ कर बोले—"धन्य है आपकी त्याग और तपस्या को—जिसके कारण से आप अपनी भूख-प्यास की भी चिन्ता नहीं करते और अब प्रसन्न भूख को शान्त करने के लिये चिता में बाटी बनाकर खाने का विचार कर रहे हो!

पार्वती बोलीं— 'भगवान्! आपने भी क्या यहाँ कौन है जिसको आप प्रणाम कर रहे हो?

भगवान् बोले – 'राज्य का वैभव त्याग कर जिस व्यक्ति ने वैराग्य का कठिन मार्ग अपनाया है और इस कंटक मार्ग पर चलकर जो अनेकों कष्ट उठा रहा है वह तपस्वी भर्तृहरि नीचे बैठा हुआ है—उसी को मैं प्रणाम कर रहा हूँ।"

भगवान् शंकर की बात सुनकर पार्वती के मन में भर्तृहरि के दर्शनों की इच्छा हुई और वे दोनों भर्तृहरि के निकट पहुँच कर पीछे की ओर खड़े हो गए और बोले—'भिक्षा देहि!

इस प्रकार के शब्द सुनते ही भर्तृहरि ने तीनों बाटी पीछे की ओर हाथ करके शंकर भगवान् को दे दी। उसने पीछे घूमकर भी नहीं देखा कि माँगने वाला कौन है।

भर्तृहरि के त्याग को देखकर पार्वती बहुत प्रभावित हुई और बोलीं— 'भर्तृहरि! भगवान् शंकर स्वयं आये हैं। आपके त्यागमय जीवन से बहुत ही प्रसन्न एवं प्रभावित है, इसलिए जो भी चाहो माँग लो!

भर्तृहरि ने शंकर की ओर आँखें उठा कर भी नहीं देखा और बोले—"आपने वचन माँगने को कहा है, इसलिये आपकी बात का अनादर नहीं करना चाहता हूँ और मैं इतना ही माँगता हूँ कि आप यहाँ से अपने स्थान को चले जाय।"

भर्तृहरि ने भगवान् शंकर के दर्शनों की भी इच्छा नहीं रखी और बिल्कुल निकट आये हुए शंकर-पार्वती की ओर दृष्टि उठा कर भी नहीं देखा। शंकर को भी अपनी उपेक्षा होते देख, बहुत प्रसन्नता हुई और वे दोनों भर्तृहरि के त्याग और संयम की प्रशंसा करते हुए वहाँ से अपने स्थान को चले गये।

त्यागी को क्या चाहिये? उसके स्वर में कवि भी बोल रहा है —

"जो तेरा है सो तेरा है, और मेरा भी तेरा है।"

५

महान् की महानता

टाल्सटाय जब अपने घर से बाहर जाते थे तो अपनी साधारण ही वेश-भूषा में ही जाया करते थे। एक समय का प्रसंग है कि वे स्टेशन पर खड़े थे और पास में ही एक सम्पन्न परिवार की महिला भी खड़ी हुई थी। महिला ने टाल्सटाय को मजदूर समझ कर अपने पास बुलाया और कहा— 'मेरे पति-देव होटल में बैठे हैं, उनको यह पत्र दे आओ और यह लो अपनी मजदूरी के दो आने पैसे।

टाल्सटाय बिना किसी हिचकिचाहट के पत्र तथा दो आने मजदूरी के लेकर चल दिये और उचित स्थान पर पत्र पहुँचाकर वापिस आ गये।

कुछ समय पश्चात् एक शिक्षित व्यक्ति आया और टाल्सटाय को आदर-भाव से नमस्कार करके उनके साथ बातचीत करने लगा।

जब उस महिला ने और भी शिक्षित व्यक्तियो को टाल्सटाय के साथ विनय-पूर्वक बातचीत करते देखा तो उसके मन मे शका पैदा हो गई और उसने समझ लिया कि यह मजदूर न होकर, कोई महान् व्यक्ति प्रतीत होता है।

महिला ने अपनी शका को निवारण करने के लिये निकट के परिचित व्यक्ति से पूछा कि—"यह जो व्यक्ति यहाँ खडा है, कौन है?"

उसने उत्तर दिया—"आप इसे नही जानती है? यह टाल्सटाय है!"

टाल्सटाय का नाम सुनते ही वह बहन बहुत ही लज्जित हुई और सर नीचे किये टाल्सटाय के निकट पहुँच कर बोली—"साहब, क्षमा कीजिये! मैंने बहुत बडी भूल की है, और वह भूल इसलिये हुई कि मैं आपको पहचानती नही थी। मैंने आपसे होटल मे पत्र पहुँचवाया और उसके बदले मे दो आने देकर आपका बहुत बडा अपमान किया। अब मैं सविनय आपसे इस गलती के लिये क्षमा माँगती हूँ और अपने दो आने भी वापिस माँगती हूँ।"

टाल्सटाय महिला की बात सुनकर हँसे और बोले—"आपने मुझे पहचाना नही, इसलिये मेरे से कार्य कराया, इसमे आपकी क्या गलती है? मैंने आपका पत्र पहुँचा दिया और दो आने मजदूरी अपनी जेब मे डाल ली है। इसलिये यह तो मेरा पारिश्रमिक है, इसे वापिस करने का तो प्रश्न ही नही उठता है।"

और इस प्रकार महिला के प्रश्न का उत्तर देकर मन्दस्मित बिखेर खिला कर हँस पड़े।

कवि भी बोल उठा —

> "रो दिल का सारे भोगन दुनिया का पानी है!
> अभिमान न कर बन्दे! यह झूठी कहानी है!"

त्याग के अतिरिक्त और कहीं वास्तविक आनन्द नहीं मिल सकता। त्याग के बिना न ईश्वर-प्रेरणा हो सकती है न प्रार्थना।

शिव और शव में क्या अन्तर है? 'श' और 'ि' का ही तो अन्तर है। जहाँ श्रद्धा-भक्ति है, वहाँ शिव है—परमात्मा है और जहाँ श्रद्धा-भक्ति नहीं है, वहाँ मसान एवं शव-दाह और भूतों की भस्म है।

पाप से बचने का नाम ही पुण्य नहीं है। पुण्य वह है—जिसमें पाप की ओर प्रवृत्ति ही न हो।

—उपाध्याय अमरमुनि

६

अपने में पाप-बुद्धि कहाँ ?

एक जमीदार ने वगीचा लगवाया। वगीचे मे विभिन्न प्रकार के मीठे फलो के वृक्ष लगवाये और वगीचे की रक्षा के लिये दो व्यक्तियो को नौकर रखा जिनमे एक व्यक्ति अधा था और दूसरा लँगडा।

जमीदार ने सोचा कि दोनो व्यक्ति दरवाजे पर बैठे वगीचे की देख-भाल भी अच्छी प्रकार करते रहेगे और स्वय फल भी तोडकर न खा सकेंगे। इस प्रकार दोनो व्यक्तियो को वगीचे की रक्षार्थ छोड कर निश्चिन्त भाव से घर चला गया।

धीरे-धीरे रात हुई और चन्द्रमा का प्रकाश जब वृक्षो के सुन्दर और मीठे फलो पर पडा तो वे और भी अधिक चमकने लगे। चांदनी मे फलो की सुन्दरता को देखकर लँगडे व्यक्ति के मन मे फलो को खाने की इच्छा हुई और वह फलो को खाने के लिए इतना अधीर हो उठा कि अपने पर सयम न रख सका।

आखिर, लंगड़े व्यक्ति के मुंह में फलों को देखकर पानी भर ही आया और उसने अपने अंधे साथी से कहा कि भाई फल बहुत अच्छे और मीठे-मीठे लगे हैं इसलिए इनको खाने की तीव्र इच्छा हो उठी है।

अंधा व्यक्ति बोला— फिर भाई क्या सोचते हो? तोड़ लाओ—दोनों खायेंगे और आनन्द से रहेंगे। अंधे की बात को सुनकर लंगड़े का रहा-सहा धैर्य भी टूट गया।

लंगड़े ने कहा— 'भाई, मैं चल-फिर नहीं सकता हूँ, इसलिये किस प्रकार फल तोड़कर ला सकता हूँ। यदि तुम मुझे अपने कंधे पर बैठा कर ले चलो तो मैं फल तोड़ने में सफल हो सकता हूँ।

अंधे व्यक्ति ने लंगड़े का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उसे अपने कंधे पर बैठा कर वृक्ष के निकट ले गया और फल तोड़ कर दोनों ने प्रेम-पूर्वक खाये। फल खाने के पश्चात् दोनों व्यक्ति आनन्द पूर्वक सो गये।

प्रातःकाल जमींदार बगीचे में आया तो उसने देखा कि दोनों व्यक्ति अपने काम पर लगे हुए हैं, परन्तु जब वह फलों के वृक्षों के पास गया तो उसने बहुत से फल टूटे हुए देखे। उसको इस प्रकार हानि देख कर बहुत निराशा हुई और वह रोष-पूर्वक बोला— 'तुम रात को सो गये मालूम पड़ते हो।

दोनों व्यक्ति जमींदार के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और दीन भाव से बोले— 'यहाँ पर कोई भी नहीं आया है।

जमींदार ने कहा—"तुम लोग सत्य नहीं असत्य बोलते हो! जब यहाँ कोई तीसरा व्यक्ति आया ही नहीं तो फिर पेड़ों से फल कहाँ चल गए? इसलिए स्पष्ट है कि यह सब कुछ तुम्हारा ही

कार्य है। अब तुम लोग सच्ची घटना कह डालो, नही तो ठीक न होगा।"

लँगडे व्यक्ति ने कहा—"हजूर! मैं चलने-फिरने मे असमर्थ हूं, इसलिये मैं कैसे फल तोडकर खा सकता हूं ?"

अधे व्यक्ति ने कहा—"सरकार! मैं देखने मे असमर्थ हूँ, इस-लिए मैं फल कैसे तोड सकता हूं ?"

जमीदार का क्रोध वढता ही चला गया और उसने दोनो की बात सुनने के पश्चात् लँगडे व्यक्ति को उठाकर अधे के कधे पर रख दिया और कहने लगा कि तुम दोनो ने इस प्रकार फल तोडे है और खाये है।

ससार के रग-मच पर मनुष्य की स्थिति भी ठीक इसी प्रकार से है। देह कहता है कि मैं तो मिट्टी का पिण्ड हूँ, इसलिए अँधा हूँ। ससार की मोहक वस्तुओ को देखकर मेरा मन कैसे चचल हो सकता है ? इसलिये मैं ससार की माया-मोह आदि विकारो से दूर हूँ, अनजान हूँ और मेरे द्वारा कोई भी पाप और नीच कर्म नही हो सकता।

जीवात्मा ने अपनी सफाई मे कहा कि मैं तो कभी पाप करता ही नही हू, क्योकि मैं इन्द्रियो से रहित हू, इसलिए कोई भी दुष्कर्म करने मे सर्वथा असमर्थ हूँ।

"देह और आत्मा की बात को सुनकर परमेश्वर ने जीव को देह-रूपी खभे पर वैठाया और कहा कि इस प्रकार दोनो के सयोग से शुभ और अशुभ—दोनो प्रकार के कर्म हो सकते है।"

७

मुनि और मौन

एक समय का प्रसंग है कि अनेक मुनियों ने एक साथ वर्षावास करने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि हमारे बीच कितने ही मुनि हैं, वे भिन्न प्रकृति और भिन्न विचार वाले हैं इसलिए कोई ऐसा नियम बनाया जाय जिसका सब पालन करें और उसके द्वारा हमारे बीच में किसी प्रकार का मत भेद और संघर्ष न बढ़े।

इस प्रकार मुनियों ने वाद-विवाद रहित होने के लिए कुछ नियम बनाये जैसे—जो भी मुनि भिक्षा जाए, वह सबके लिए आसन बिछाये पीने के पानी का प्रबन्ध करे, आहार करने के पश्चात् जो बचे केवल उसे ही ग्रहण करे, यदि पानी का बर्तन खाली हो तो उसे भर दे और यदि इतने कार्य वह स्वयं करने में असमर्थ हो तो संकेत की भाषा में दूसरे से करने के लिए कह दे परन्तु परस्पर कोई किसी से न बोले।

इस प्रकार नियम बना कर सभी सन्तो ने उनका पालन किया और सुख-शान्ति से अपना वर्षावास पूरा किया।

चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् सभी मुनिराज महात्मा बुद्ध के पास गये और बोले—

"हमने अपना वर्षावास बहुत ही सुख-शाति के साथ सम्पन्न किया है। यद्यपि हम भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय और विचार वाले सत थे, फिर भी हमने कुछ नियम-उपनियम बनाकर अपने बीच मे शान्ति रखी और सुख-शान्ति मे वर्षावास समाप्त किया। हम कभी भी एक-दूसरे से नही बोले और सभी ने प्रसन्नतापूर्वक अपना-अपना कार्य किया।"

मुनियो की बात सुनकर बुद्ध बोले—'यह ठीक है कि आप लोगो ने मौन रखकर अपना वर्षावास शान्ति-पूर्वक व्यतीत किया और आपस मे सघर्ष और वाद-विवाद नही किया, परन्तु मौन रहने मात्र से कोई मुनि नही कहला सकता है। यह एक अलग बात है कि आप लोग शान्त रहे, परन्तु आपने एक-दूसरे के साथ पशु के समान व्यवहार किया है। मौन रहना एक अलग बात है और मुनि-व्रत पालन करना दूसरी बात है। इस लोक और परलोक का जो मनन करे—वास्तव मे वही सच्चा मुनि है।"

८

आचार्य शंकर और चाण्डाल

एक दिन आचार्य शंकर स्नान करने के पश्चात् अपने आश्रम की ओर जा रहे थे। उनको मार्ग में एक चाण्डाल मिला। चाण्डाल के साथ तीन-चार कुत्ते भी थे।

आचार्य शंकर ने उस अछूत चाण्डाल को कुछ दूरी पर ही खड़ा रहने की आज्ञा दी। चाण्डाल ने आज्ञा का उल्लंघन करते हुए कहा

"हे स्वामीजी महाराज! आप अपवित्र किसे मानते हैं? मेरे शरीर को अपवित्र मानते हैं या मेरी आत्मा को? इन दोनों में से किसको आप प्रथम हटने को कह रहे हैं। मुझे स्पष्ट समझाने का कष्ट करें, जिससे कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँ। आप तो अद्वैतवादी महात्मा हैं फिर छूत और अछूत का भेदभाव आपके मन में कैसे आया?"

आचार्य शंकर जिस व्यक्ति को नीच और मूढ़ समझ रहे थे उसके मुख से इस प्रकार की तर्क-सिद्ध बात सुनकर बहुत ही

आश्चर्यचकित हुए। आचार्य जी चाण्डाल की वात सुनकर मन ही मन मे विचार करने लगे और कुछ देर तक चुपचाप खडे रहे। उन्होंने वुद्धि की तुला पर चाण्डाल की वात को तोला, तो अन्त मे आचार्य जी को अपनी भूल प्रतीत हुई।

आचार्य शकर विनम्र-भाव से चाण्डाल के पैरो पर गिर पडे और क्षमा-प्रार्थना की।

इस घटना से यह स्पष्ट है कि शकराचार्य को अद्वैतवाद के व्यावहारिक स्वरूप को समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ, जिसको कि उन्होंने श्रद्धावश स्वीकार किया और यदि वे इसे स्वीकार न करते तो सम्भव है वेदान्त मत अधूरा ही रहता।

धन्य है कि ससार मे ऐसे महान् पुरुष ससार के सम्मुख एक महान् आदर्श प्रस्तुत करके मानव को सन्मार्ग पर वढने के लिए प्रेरित करते हैं और अपने कर्त्तव्य-मार्ग पर प्रगति से कदम वढाकर, सदा के लिए प्राणियो के हेतु एक नया मोड प्रशस्त कर जाते हैं।

कहा भी है—

> "श्रेय प्रेय मिले हुए हैं विश्व के हर काम में,
> श्रेय की ही ओर हरदम ध्यान होना चाहिए।"

९

आत्म-ध्यान में रमणता

एक महात्मा बहुत ही वैराग्यशील और महान् विचारक थे। एक दिन वे अचानक ही रोने लगे। उनके पास बैठे हुए भक्तों ने रोने का कारण पूछा तो महात्मा ने कहा—

"आज गंगादि तीर्थ करने की मन में इच्छा हुई है इसलिए मैं रोने लगा।

भक्तों ने कहा— स्वामी जी यह तो आपका शुभ विचार है क्योंकि तीर्थ करने की मनोवृत्ति होना ही एक महान् पुण्य का कार्य है। इसमें रोने जैसी क्या बात है यह तो आपके शुभ कर्मों का फल है कि आपके मन में ऐसे सुन्दर भाव उत्पन्न हुए।

महात्मा बोले—"आत्म-दर्शन की लगन के अतिरिक्त जितनी भी इच्छाएँ होती हैं वे सब दुःखदायी होती हैं। आज तो मेरा मन तीर्थ करने को तैयार हुआ परन्तु कल दुनिया के भोग भोगने

को भी तैयार हो सकता है। मैं कैसे विश्वास कर लूं कि तीर्थ-यात्रा के पश्चात् अन्य कोई इच्छा ही नही होगी ? यदि मन की इच्छा को इसी प्रकार हम स्वीकार करते चले गये, तो इससे कितनी हानि होगी ?"

महात्मा ने आगे कहा—"मन की बात को स्वीकार करना ही प्राणी की पहली हार है। ससार मे मन को आकर्षित करने वाली अनेक वस्तुएँ है और मन एक के बाद एक पर अधिकार करने की चेष्टा करता रहता है। वास्तव मे ससार मे मनुष्य कभी भी अपनी इच्छाओ की पूर्ति नही कर पाता है और प्रति-पल इच्छा करता-करता ही वह अपने प्राण गँवा देता है। न तो उसे अपनी इच्छाओ की पूर्ति से सतोष ही होता है और न वह ससार मे शाति ही प्राप्त कर सकता है। इसलिए मानव को कभी भी इच्छाओ के अनुसार अपने मार्ग पर अग्रसर नही होना चाहिए, बल्कि इसके विपरीत इच्छाओ पर सयम का प्रतिबन्ध लगाकर इनको अपने काबू मे करना चाहिए।"

१०

कबीर और शोक-चिह्न

एक समय की बात है कि कुछ व्यक्ति महात्मा कबीरदास जी के दर्शन करने के लिए उनके निवास-स्थान पर गये। जब व्यक्ति उनके घर पर पहुँचे तो पता लगा कि गाँव में एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई है और कबीर जी श्मशान में गये हैं।

दर्शनार्थी दूर से आये थे और उन्हें शीघ्र ही वापिस भी लौटना था इसलिए उन्होंने सोचा कि चलो दर्शन तो करने ही हैं—श्मशान भूमि में ही दर्शन करके वापिस लौट चलेंगे।

दर्शनार्थी श्मशान भूमि पहुँचे। उनको यह पता था कि कबीरदास जी अपने सर पर शोक-चिह्न बांधते हैं, परन्तु वहाँ देखा तो सभी व्यक्ति शोक-चिह्न बांधे हुए थे इसलिए वे कबीरदास जी को नहीं पहचान सके।

सभी व्यक्तियों ने श्मशान भूमि से वापिस आते समय अपने शोक-चिह्न सर से उतार लिए, परन्तु कबीर ने नहीं उतारा और वे इसी प्रकार घर भी पहुँच गये।

दर्शनार्थी भी कवीरदास के पीछे-पीछे घर पर पहुँच गये। घर पहुँचने पर भी कवीर ने शोक-चिह्न नही उतारा और स्वय आगन्तुको की सेवा मे लग गये।

जव कवीर से शोक-चिह्न न उतारने का कारण पूछा गया, तो उन्होंने कहा—

"ससार मे प्राणी नाशवान् है, अर्थात् एक न एक दिन उसे नष्ट होना ही है क्योकि कोई भी पदार्थ सदा रहने वाला नही है। कोई पूर्ण आयु होने पर मृत्यु की गोद सोता है, तो कोई अधूरा ही काल के मुँह मे चला जाता है।"

"मैं स्वय इस वात को भूल न जाऊँ कि मेरे अन्त करण मे भगवान् रहता है, इसलिए मैं इस शोक-चिह्न को सदा ही धारण किये रहता हूँ। आपने शव-यात्रा मे नही देखा कि जव तक सभी लोग शोक-चिह्न लगाये रहे तव तक "राम-नाम सत्य"—वोलते रहे थे और जव उन्होने शोक-चिह्न उतार दिये, तो राम-नाम को भूलकर अन्य सासारिक झझटो के सम्वन्ध मे चर्चा करने लगे।"

"यदि हम ससार को सत्य मानते हैं तो परमात्मा असत्य सिद्ध होता है और यदि ससार को असत्य मानते है तो परमात्मा सत्य सिद्ध होता है।"

आगन्तुक दर्शनार्थी सन्त कवीर के दर्शन और वचनामृत से वास्तविक वोध प्राप्त कर प्रसन्नता पूर्वक अपने घर लौट गये और कवीरदास के आदर्शमय कार्यों एव स्पष्ट विचारधारा की उनके ऊपर एक अमिट छाप पड गई, जिसको कि वे अपने जीवन मे कभी नही भूले।

११

सत्सङ्ग बड़ा या स्वभाव ?

किसी बादशाह ने एक बिल्ली पाली। बिल्ली को बादशाह अपने साथ ही रखता था और जब वह कुरान पढ़ता था तो बिल्ली के सर पर दीपक रख देता था।

एक दिन बादशाह ने वजीर (मंत्री) से पूछा—"सत्संग बड़ा है या स्वभाव ?

वजीर ने उत्तर दिया—जहाँपनाह ! स्वभाव ही बड़ा है।

बादशाह ने कहा— 'देखो वजीर ! सत्संग के प्रभाव से यह बिल्ली अपने मस्तक पर दीपक रखे तब तक मेरे पास बैठी रहती है जब तक कि मैं कुरान न पढ़ लूं। यह सत्संग का ही तो प्रभाव है।"

वजीर ने कहा—"गरीब परवर ! आप चाहे जो कुछ कहें लेकिन स्वभाव ही बड़ा होता है और अवसर आने पर मैं आपको सत्य सिद्ध करके भी दिखला दूंगा।

एक दिन वादशाह कुरान पढ रहे थे, और वह विल्ली भी मस्तक पर दीपक रखे हुए वैठी थी। वजीर ने इसी अवसर को उचित समझकर वहाँ एक चूहे का वच्चा छोड दिया, तो विल्ली के दोनो कान खडे हो गये। कुछ देर के पश्चात् वजीर ने दूसरा चूहा छोडा, तो विल्ली के रोंगटे खडे हो गये और इसी के साथ तीसरा चूहा जैसे ही वजीर ने छोडा, तो विल्ली एकदम उछलकर चूहे को पकडने के लिये दौडी और दीपक गिर कर वुझ गया। दीपक का समस्त तेल कुरान पर गिर पडा और कुरान तेल से खराव हो गई।

उसी समय वजीर ने कहा—"हुजूर! कहिए, सग वडा या स्वभाव? इस घटना से अव आपने निर्णय कर लिया होगा कि कौन ठीक है और कौन गलत है?"

वजीर की वात सुन कर वादशाह का सर नीचा हो गया और उसने मौन धारण करके वजीर की वात का मूक समर्थन कर दिया।

१२

आश्चर्य क्या है ?

एक दिन किसी भक्त ने महात्मा से प्रश्न किया कि— संसार में आश्चर्य क्या है ?"

महात्मा बोले—"संसार में जितने भी व्यक्ति हैं वे किसी न किसी दुख से पीड़ित हो रहे हैं। किसी व्यक्ति को धन की आवश्यकता है और किसी को सन्तान की किसी को स्त्री की कामना है तो किसी को नाम की। संसार में जितने भी व्यक्ति हैं—उन सबकी अलग-अलग आवश्यकताएं हैं और उनकी पूर्ति में ही मानव जीवन व्यतीत करता जा रहा है फिर भी उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है।

संसार नाशवान है और यह बात सत्य ही है कि जो पैदा होता है वह एक-न-एक दिन नष्ट अवश्य होता है। इसके सम्बन्ध में सबको ज्ञात भी है कि एक-न-एक दिन यह शरीर नष्ट हो जायेगा। परन्तु मानव फिर भी संसार में ऐसे कार्य क्यों कर रहा है जैसे कि उसे सदा ही संसार में रहना हो।

व्यक्ति प्रति दिन अनेक वृद्धो, युवको एव वालको को मृत्यु के मुँह मे जाते हुए देखता है, परन्तु फिर भी उसका प्रत्येक कार्य ऐसा है जिससे प्रतीत होता है कि वह सदा ही ससार मे रहेगा।

"वस, यही आश्चर्य है कि मानव सब कुछ देखते और समझते हुए भी मृत्यु से डरकर सत्य-कर्म की ओर अग्रसर नही होता है।"

कवि भी पुकार रहा है —

"खोल मन अब तो आँखें खोल !
उठा लाभ कुछ मिला हुआ है, जीवन यह अनमोल !

१३

व्यस्तता में भी उपासना

एक ग्रामीण युवक अपने सांसारिक कार्यों में बहुत व्यस्त रहता था। प्रातः से लेकर सन्ध्या तक उसे निरन्तर कार्य में ही जुटा रहना पड़ता था और यहाँ तक कि कभी-कभी तो उसे भोजन करने तक का भी अवकाश नहीं मिलता था।

जिस समय नारद मुनि ने विष्णु भगवान् से उस युवक की प्रशंसा सुनी तो उसी समय वे उस युवक के घर गये और उन्होंने देखा कि वह युवक तो दिन भर सांसारिक झंझटों में फँसा रहता है फिर इसके कार्यों से भगवान् प्रसन्न क्यों है यह समझ में नहीं आता है।

नारद मुनि वहाँ से लौटकर फिर विष्णु भगवान् के पास गये और कहा कि वह व्यक्ति तो दिन भर सांसारिक झंझटों में व्यस्त रहता है और आपका स्मरण करना तो अलग रहा उसे तो कभी-कभी भोजन करने तक का भी समय नहीं मिलता ! फिर भी न जाने क्यों आप उस युवक की प्रशंसा कर रहे थे।

भगवान् बोले—"नारद! वह युवक सासारिक झझटो मे व्यस्त रहते हुए भी कभी मुझे भूलता नही है और दिन भर के व्यस्त कार्यक्रम के पश्चात् जब उसे रात्रि मे विश्राम करने से पूर्व समय मिलता है, तो वह प्रतिदिन मुझे स्मरण करता है और कम समय होते हुए भी यथाशक्ति एकाग्र-मन से वह मेरी सभक्ति वन्दना करता है।"

भगवान् विष्णु ने आगे कहा—"सुनो, नारद! यदि आप सासारिक झझटो मे इस प्रकार लगे होते तो अवश्य ही मेरा स्मरण भूल जाते। बस, उस युवक के इसी कार्य से मुझे प्रसन्नता का अनुभव होता है कि वह निरन्तर व्यस्त होते हुए भी मेरा स्मरण कभी नही भूलता है और नित्य प्रति जितना भी समय उसे इस कार्य के लिये मिलता है, उसमे वह एकाग्र-मन से मेरा स्मरण करता है।"

"ससार मे अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास समय का कोई अभाव नही है और वे अपना अमूल्य समय इधर-उधर व्यर्थ मे खो देते हैं, परन्तु प्रभु-स्मरण का उनको स्वप्न मे भी ध्यान नही है। फिर ऐसा युवक जो दिन भर कडा परिश्रम करने के पश्चात् यदि दो मिनट भी सच्चे मन और लगन से प्रभु-स्मरण करता है, तो अवश्य ही वह प्रशसा का पात्र है।"

१४

शक्ति और उपयोग

एक समय बहुत ही धनवान् था। उसने अपने धन की रक्षा के लिये अनेक प्रकार के हथियार भी रख लिये थे जिससे कि धन की पूर्ण सुरक्षा करने में सफल हो सके।

एक बार रात्रि के समय सेठ जी के घर में चोर घुस आये। जब सेठानी को चोरों के आने का पता चला तो वह बहुत घबराई। उसने घबराई हुई धीमी आवाज से सेठ जी को जगाया।

चोरों के आने की सूचना पाकर सेठ जी भी घबरा उठे परन्तु उसी क्षण उन दोनों को अपने घर में रखे हथियारों की याद आ गई तो उन दोनों को कुछ साहस हुआ और सेठ जी ने उसी क्षण अपने हथियार हाथ में तो उठा लिये परन्तु हथियार चलाने की कला से अनभिज्ञ होने के कारण से वे हथियार कुछ

भी काम न आ सके और जब तक सेठ जी किसी अन्य व्यक्ति को बुलावें तब तक चोर समस्त धन-माल लेकर चम्पत हो गये।

बस, यही स्थिति हमारे शरीर-स्थित शक्ति की भी है। मानव देह के अन्दर बडे से बडा और कठिन से कठिन कार्य करने की शक्ति विद्यमान है, परन्तु व्यक्ति उस शक्ति का उचित उपयोग न करके इधर-उधर के कार्यों मे नष्ट कर देता है और उस शक्ति को यथार्थ रूप मे कार्य मे प्रयोग करना नही जानता है।

कवि भी संकेत कर रहा है —

> बजती है मौत की घटी, सजती है सेज कफन की।
> होगा खामोश चिता मे, मन मे रहेगी मन की॥

१५

कर्म का फल

एक बार एक महात्मा अपने शिष्य सहित जा रहे थे तो मार्ग में उन्होंने एक मछियारे को मछली पकड़ते हुए देखा।

गुरु जी तो नीची दृष्टि करके आगे निकल गये परन्तु शिष्य से न रहा गया और वह वहीं पर खड़ा होकर मछियारे को—'अहिंसा परमोधर्म' —का उपदेश देने लगा।

मछियारे ने कहा —"बाबा तुम अपना कार्य करो और हम अपना कार्य करेंगे। तुम अपने सीधे रास्ते चले जाओ। इस संसार की खट-पट की ओर ध्यान क्या देते हो!

वाद-विवाद में शिष्य को क्रोध आ गया और मछियारा भी उत्तेजित हो गया। दोनों ओर से वाक्-युद्ध होने लगा और बात बढ़ गई।

गुरु जी के कान मे जब कठोर शब्द सुनाई पडे, तो वे पीछे की ओर देखने लगे। उन्होंने देखा कि शिष्य मछियारे के साथ झगडा कर बैठा है, तो गुरु जी वापिस उसी स्थान पर आये और शिष्य को समझाया।

शिष्य बोला—"गुरु जी, यदि आप आज्ञा दे तो इस मछियारे का काम तमाम कर दूँ।"

गुरु जी ने कहा—"यह सन्त का कर्त्तव्य नही है। कर्म की गति विचित्र है। कर्मों का उदय होने पर सभी को उनका फल भोगना पडता है और यही सृष्टि का नियम—निरन्तर चला आ रहा है। ससार मे कोई भी अच्छाई और बुराई के फल को भोगने मे नही बच सकता है।"

गुरु जी के उपदेश को सुनकर शिष्य को कुछ ज्ञान हुआ और वह चुपचाप गुरु के साथ चल दिया।

कुछ वर्षों के पश्चात् गुरु-शिष्य मार्ग मे चले जा रहे थे, तो देखा कि मार्ग मे एक सर्प पडा है और असख्य चीटियाँ उसे काट रही है। सर्प तडप रहा है, परन्तु भाग जाने मे असमर्थ होने के कारण वही पर पडा हुआ है।

सर्प को देखकर शिष्य को बहुत आश्चर्य हुआ। उस समय गुरु जी ने अपने ज्ञान के द्वारा बतलाया कि—"देखो, यह वही मछियारा है जो कि उस दिन जगल मे मछलियाँ पकड रहा था। यह मरकर सर्प बन गया है और मछलियाँ चीटियाँ बन गयी है। अब ये अपने पूर्व जन्म का बदला ले रही है।"

"संसार में मनुष्य जो भी शुभ और अशुभ कर्म करता है उसका फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने शुद्ध मन से सदा ऐसे कर्म करे जिससे इस लोक और परलोक में उसे सुख व शान्ति मिले और मनुष्य-जन्म लेने का जो उसे सुन्दर अवसर मिला है वह सफल हो सके।

कवि की चेतावनी भी सुनिये —

> वह काम करो मानव ! क्यों व्यस्त बेकाम है ?
> यहीं खोल, वे मोती हैं जिन्हें व्यर्थ लुटाता है ॥

❀❀
❀

१६

अज्ञान और अन्धा

एक ब्राह्मण के यहाँ पच्चीस वर्ष की आयु मे बच्चा हुआ। बच्चा पैदा होने के पश्चात् वह ब्राह्मण धन कमाने की इच्छा से परदेश चला गया। इस प्रकार वह बहुत लम्बे समय तक बाहर ही रहता रहा।

पुत्र बडा हुआ और अध्ययन करने लगा। पुत्र यह तो जानता था कि मेरा पिता परदेश मे है परन्तु पिता को आँखो से नही देखा था।

एक दिन पुत्र को पिता के घर आने का शुभ समाचार मिला, तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई और वह पिता के स्वागतार्थ पाँच मील चलकर स्टेशन पर पहुँचा।

लडके का पिता धर्मशाला मे आकर ठहर गया और सयोग-वश पुत्र भी उसी धर्मशाला मे ठहरने के लिये पहुँच गया। धर्मशाला मे दोनो को एक ही कमरा ठहरने के लिये मिला। यहाँ तक कि कमरे मे सामान रखने के प्रश्न पर दोनो मे झगडा भी हो गया।

दूसरे दिन लड़का यह समझकर कि पिता जी नहीं आये हैं अपने घर की ओर चल दिया। कुछ ही समय के पश्चात् पिता भी लड़के के पीछे-पीछे चल दिया।

लड़के ने मन में समझ लिया कि इसे पानी नहीं मिली है इसलिये यह पैदल ही जा रहा है। लड़का मार्ग में विश्राम के लिये बैठ गया और पिता आगे बढ़ गया परन्तु वे दोनों आपस में एक-दूसरे को न जानने के कारण से पहचान न सके।

पिता पहले घर पहुँच गया और स्नान कर ही रहा था कि जब तक पुत्र भी आ गया और अपनी माता से बोला—"माँ! पिता जी नहीं आये हैं। मैंने सब जगह अच्छी प्रकार से देखा परन्तु कहीं भी नहीं मिले। सम्भव है कुछ दिन बाद आवें।"

उसी समय पिता स्नान करके घर से बाहर आया तो माता ने अपने पुत्र से कहा— "बेटा ये हैं तुम्हारे पिता जी।"

लड़का बोला— "माँ हम दोनों रात भर एक ही धर्मशाला में और एक ही कमरे में ठहरे, परन्तु एक-दूसरे को न पहचानने के कारण से यह सब कुछ भूल हुई है। यहाँ तक कि हम दोनों कमरे में सामान रखने के प्रश्न पर आपस में झगड़ा भी कर बैठे।

"बस इसी प्रकार बालक रूपी जीव है यह अज्ञानी होने के कारण से ईश्वर को नहीं पहचानता है, किन्तु जब माता रूपी गुरु इस बालक रूपी जीव को पिता रूपी ईश्वर का परिचय करा देता है तो यह जीवात्मा ईश्वर का परम भक्त बन जाता है।"

१७

मन के जीते जीत

एक प्रसिद्ध ब्राह्मण राजा जनक के पास गया और बोला कि—"हे राजन! यह पापयुक्त मन मुझे इतना चचल बना देता है कि मेरा ध्यान कभी स्थिर नही रहता है। इससे निवृत्ति पाने का भरसक प्रयत्न करता हूँ, परन्तु फिर भी मुक्त नही हो पाता हूं।"

राजा ब्राह्मण की बात सुनकर खडा हो गया और अपने सामने के एक खम्भे को पकड लिया। राजा ने ब्राह्मण से कहा कि—"यदि यह खम्भा मुझे छोड दे तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दूँ।"

ब्राह्मण राजा की बात को सुनकर आश्चर्य चकित हो गया और बोला—"राजन्! आप तो स्वयम् खम्भे को पकडे हुए है, न कि खम्भा आपको! खम्भा तो जड वस्तु है, उसे आप छोड देंगे तो वह छूट जायेगा।"

राजा जनक हँस कर बोले—"बस आपने अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं ही दे दिया है। इस खम्भे के अनुसार मन भी एक जड़ वस्तु है। जिस ओर मन चलता है उसी ओर आप चल पड़ते हैं अर्थात् आप मन से बँधे हुए हैं न कि मन आप से।

ब्राह्मण बोला—"यह बेचारा मन जड़ वस्तु होते हुए चेतन आत्मा को कैसे पकड़ सकता है?"

विरह बोले—"जिस प्रकार मैंने खंभे को पकड़ा था उसी प्रकार आपने भी मन को पकड़ रखा है। यदि आप मन को छोड़ दो अर्थात् मन की इच्छा पूर्ण न करो तो बस आप मन के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे और यदि आप मन की इच्छाओं एवं कामनाओं की पूर्ति में ही लगे रहे तो जीवन में इसके अतिरिक्त कुछ भी कर सकने में असमर्थ होंगे और आप सदा ही मन के बन्धन में बन्धे रहेंगे।

"मन को आप कु-मार्ग पर चलाइये या सु-मार्ग पर, यह आपके आधीन है। यदि आप जड़ मन को छोड़ना चाहें तो इस में आप सफल हो सकते हैं। लगभग सभी व्यक्ति यही कहते हैं कि मन की इच्छायें कभी पूर्ण नहीं होती हैं और वे माया-मोह के फँदे में व्यक्ति को इस प्रकार बाँध देती हैं कि व्यक्ति को इन इच्छाओं एवं कामनाओं से पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। सत्य तो यह है कि व्यक्ति ही मन की इच्छा के वशीभूत होकर मनोकामनाओं को पकड़े हुए रहता है।

०००

१८

इस हाथ दो, उस हाथ लो !

एक सेठ वहुत ही धनवान् था। जीवन मे उसने कभी भी दान नही किया और न कभी दीन-दुखियो का ही कुछ उपकार किया। सदा ही दीन भिक्षु उसके दरवाजे से खाली हाथ जाते थे।

सेठ के चार लडके थे और वे भी अपने पिता के समान कृपण स्वभाव के थे। उन्होंने भी अपने पिता के समान दान-दक्षिणा देना नही सीखा था।

सेठ जी वहुत वृद्ध हो चुके थे, और यहां तक कि वीमार भी पड गये। सेठ ने अपने चारो पुत्रो को वुलाया और अपनी सम्पत्ति का वॅटवारा कर दिया। कुछ सम्पत्ति स्कूल व धर्मशाला वनवाने के लिये अपने पास रख ली।

सेठ का स्वास्थ्य अचानक ही गिर गया और दिन-प्रतिदिन वह अस्वस्थता की ओर वढता ही गया।

जब सेठ को अपने जीवन की आशा नहीं रही तो उसने अपने चारों पुत्रों को बुलाकर यह शेष धन भी उनको दे दिया और कह दिया कि यह धन स्कूल व धर्मशाला के बनवाने में ही व्यय होना चाहिए।

पुत्रों ने सोचा कि बुढ़ापे में पिता का दिमाग ठिकाने नहीं है, इसलिए यह घर की लाभ-हानि सोचने में असमर्थ हैं, तभी तो यह धन स्कूल और धर्मशाला में लगाने को कह रहे हैं। ऐसा विचार करके चारों पुत्रों ने उस अवशिष्ट सम्पत्ति को भी चार हिस्सों में विभाजित कर लिया और अपने अपने कार्य में लगा लिया।

रोग-शय्या पर पड़े सेठ को जब यह पता लगा तो उसको बहुत दुःख हुआ और वह अपने मन की इच्छाओं को मन में ही लिये हुए इस संसार से विदा हो गया।

सेठ को उस समय ध्यान आया कि—'यदि प्रारम्भ से ही कुछ न कुछ दान या शुभ कार्यों में पैसा लगाता रहता तो आज यह निराशा न देखनी पड़ती।"

हस बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कछु देय।
अकल बड़ी उपकार कर, जीवन का फल यह॥

—कबीर

१९

पारस मणि और हरि नाम

एक ब्राह्मण को धनवान् बनने की अत्यन्त लालसा थी। वह साधु-संगति भी इसी इच्छा से करता था कि सम्भव है कोई संत प्रसन्न होकर ऐसा उपाय बतला दे जिससे कि मैं धनवान बन जाऊँ।

वह ब्राह्मण व्यापार भी करता था, परन्तु कभी भी उसके पास उसकी इच्छानुसार सम्पत्ति इकट्ठी नहीं हुई।

एक दिन किसी संत ने उस ब्राह्मण की सेवा से प्रसन्न होकर कहा कि गोस्वामी जी के पास एक पारस मणि है और उसके स्पर्श मात्र से धातु स्वर्ण बन जाती है।

ब्राह्मण लोभ के वशीभूत तो था ही, उसी समय गोस्वामी जी के पास पहुँचा और पारस मणि देने की प्रार्थना की।

गोस्वामी जी हँसे और बोले—"पारस मणि इस राख के अन्दर पड़ी है ले लो।" ब्राह्मण गोस्वामी जी के मुख को देखने लगा और उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि गोस्वामी जी ने मणि

इस राख के अन्दर डाल दी होगी। उसने अपने मन में सोचा कि गोस्वामी जी हँसी कर रहे हैं।

जब ब्राह्मण ने फिर से पारस मणि देने का आग्रह किया तो गोस्वामी जी ने इस बार भी स्पष्ट कह दिया कि इसी राख के अन्दर पड़ी है उठा लीजिये।

ब्राह्मण ने पारस मणि को राख से निकाल लिया परन्तु उसे इस बात से बहुत आश्चर्य हुआ कि पारस मणि जैसी अमूल्य वस्तु राख के अन्दर क्यों डाली गई?

ब्राह्मण ने गोस्वामी जी से पूछा कि—"आपने यह मणि इस प्रकार राख के अन्दर क्यों डाली है? क्या आपके पास ऐसी कोई दूसरी मणि है जिसके समक्ष यह मणि एक तुच्छ वस्तु समझ कर आपने राख के अन्दर डाल दी है?"

गोस्वामी जी ने ब्राह्मण के कान में चुपके से कह दिया कि— 'हरि नाम' – एक ऐसी अद्भुत वस्तु है जिसके सामने पारस मणि कुछ भी नहीं है।"

ब्राह्मण को गोस्वामी जी के शब्दों पर अटूट विश्वास हो गया और वह मणि को भूल गया और 'हरि नाम' रटता हुआ सीधा अपने घर पहुँच गया।

जब तारा बन सुवन है, चहत जमाये चित।
क्यों न दीप बोलत नहीं, बस के दिन को मित॥

—रहीम

२०

सच्चा वैराग्य

प्राचीन काल मे सिंहल द्वीप के मध्य अनुराधापुर नामक शहर था, जिसके आस-पास बहुत ही विहार-क्षेत्र थे। शहर से कुछ ही दूर पर एक पहाडी थी, जिसको 'चैत्य पर्वत' कहा जाता था।

पहाडी पर महातिष नामक भिक्षु रहता था। एक दिन वह भिक्षु भिक्षा करने के लिये अनुराधापुर जा रहा था। भिक्षु को मार्ग मे एक तरुण सुन्दरी मिली जो कि अपने पति से रुष्ठ होकर जा रही थी। सुन्दरी ने भिक्षु को मोहित करने के लिये हँसना प्रारम्भ किया और भिक्षु को आकर्षित करने का हर सम्भव उपाय किया।

भिक्षु ने जब उस हँसती हुई सुन्दरी को देखा तो सर्व प्रथम उसकी दृष्टि दांतो पर पडी और उसे यह स्मृति होने मे विलम्ब न लगा कि मनुष्य हड्डियो से बना हुआ एक पिंजरा है। ऐसा

विचार मन में आते ही उस भिक्षु ने स्त्री के सौन्दर्य की ओर कुछ भी ध्यान न दिया और उसके सामने सुन्दरी के स्थान पर हाड़-माँस का एक पिंजरा ही खड़ा हुआ प्रतीत हुआ। इस प्रकार वह भिक्षु बिना किसी विचार के आगे बढ़ गया।

उसी मार्ग से स्त्री का पति भी पत्नी की खोज में आ रहा था। वह व्यक्ति भिक्षु से पूछने लगा— 'क्या आपने, एक तरुण सुन्दरी को इस मार्ग से जाते हुए देखा है ?

भिक्षु बोला—"इस मार्ग से स्त्री गई या पुरुष इसका मुझे ध्यान भी नहीं है। हाँ एक हाड़-माँस का पिंजरा अवश्य देखा है।'

वह व्यक्ति भिक्षु की इस वैराग्य भावना से बहुत ही प्रभावित हुआ और उसने सदा ही उस भिक्षु की सच्ची भक्ति व वैराग्य का अनुमान किया।

धर्म का भूषण वैराग्य है, वैभव नहीं।

— महात्मा गांधी

२१

सोच-विचार

जूलियस सीजर नामक एक प्रसिद्ध सेनापति हुआ है, जिसमें लाखों सैनिकों को अनुशासन में रखने का अपूर्व साहस एवं उत्साह था। यही कारण था कि भयंकर से भयंकर संग्राम में भी उसे विजय-श्री प्राप्त होती और शत्रुओं के पैर कभी भी उसके सामने न जम पाते।

इसका प्रमुख कारण यही था कि उसने सर्व प्रथम अपने अन्दर के शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली थी। क्रोध को वश में करने के लिये विशेष रूप से प्रयत्न किया था।

जूलियस सीजर समझता था कि मनुष्य के अन्दर क्रोध का प्रवेश होने पर वह समानता, सहनशीलता एवं शान्ति को खो बैठता है। उस अवस्था में व्यक्ति विचार पूर्वक कार्य करने में असमर्थ रहता है।

विचार मन में आते ही उस भिक्षु ने स्त्री के सौन्दर्य की ओर कुछ भी ध्यान न दिया और उसके सामने सुन्दरी के स्थान पर हाड़ मांस का एक पिंजरा ही खड़ा हुआ प्रतीत हुआ। इस प्रकार वह भिक्षु बिना किसी विचार के आगे बढ़ गया।

उसी मार्ग से स्त्री का पति भी पत्नी की खोज में आ रहा था। वह व्यक्ति भिक्षु से पूछने लगा—'क्या आपने एक तरुण सुन्दरी को इस मार्ग से जाते हुए देखा है?

भिक्षु बोला—'इस मार्ग से स्त्री गई या पुरुष इसका मुझे ध्यान भी नहीं है। हाँ एक हाड़-मांस का पिंजरा अवश्य देखा है।"

वह व्यक्ति भिक्षु की इस वैराग्य भावना से बहुत ही प्रभावित हुआ और उसने सदा ही उस भिक्षु की सच्ची भक्ति व वैराग्य का गुणगान किया।

धर्म का भूषण वैराग्य है, वैभव नहीं।

— महात्मा गांधी

२१

सोच-विचार

जूलियस सीज़र नामक एक प्रसिद्ध सेनापति हुआ है, जिसमे लाखो सैनिको को अनुशासन मे रखने का अपूर्व साहस एव उत्साह था। यही कारण था कि भयकर से भयकर सग्राम मे भी उसे विजय-श्री प्राप्त होती और शत्रुओ के पैर कभी भी उसके सामने न जम पाते।

इसका प्रमुख कारण यही था कि उसने सर्व प्रथम अपने अन्दर के शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर ली थी। क्रोध को वश मे करने के लिये विशेप रूप से प्रयत्न किया था।

जूलियस सीजर समझता था कि मनुष्य के अन्दर क्रोध का प्रवेश होने पर वह समानता, सहनशीलता एव शान्ति को खो बैठता है। उस अवस्था मे व्यक्ति विचार पूर्वक कार्य करने मे असमर्थ रहता है।

जूलियस सीजर को जब क्रोध आता था तो वह उस समय तक कोई कार्य नहीं करता था जब तक कि उसका क्रोध शान्त न हो जाए और वह सदा ही क्रोध के समय आने वाले विचारों एवं शान्ति के समय में आने वाले विचारों की तुलना करता था। इस प्रकार की तुलना करने से उसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता था कि यदि क्रोध की स्थिति में कार्य किया जाता तो कितना अनर्थ होता और उसके लिये बहुत ही पश्चात्ताप करना पड़ता।

इस प्रकार जूलियस सीजर ने क्रोध पर विजय प्राप्त की और इसी के कारण ही उसका साहस और आत्मिक-बल निरन्तर बढ़ता गया और उसने संसार में बहुत ही बड़े एवं साहसिक कार्य किये जिसके कारण आज भी अनेक व्यक्ति उसका नाम आदर पूर्वक लेते हैं।

२२

त्याग

फ्रास की राजधानी पेरिस मे जर्मेइन नामक एक पादरी रहता था, जो कि अपने उत्तम चरित्र के लिये वहुत ही लोकप्रिय था। इसी कारण से देश का राजा भी उसका वहुत आदर करता था।

एक वार पादरी से प्रसन्न होकर राजा ने उसे एक सुन्दर घोडा पुरस्कार रूप मे दिया और कहा कि यह घोडा आपके उपयोग के लिये ही है।

जर्मेइन वहुत ही दयावान व्यक्ति था। एक दिन उसे एक गुलाम पर वहुत ही दया आ गई और उसने उस कण्टकमय जीवन व्यतीत करने वाले गुलाम को छुडाने की प्रतिज्ञा की।

जव जर्मेइन ने गुलाम के स्वामी से गुलाम को छोड देने के सम्वन्ध मे कहा, तो उसने वहुत वडी कीमत माँगी। इतनी वडी कीमत देने मे पादरी असमर्थ था। परन्तु पादरी दुखी गुलाम को

सुड़ाने के लिये निश्चय कर चुका था और उसके हृदय में दया का भाव निरन्तर बढ़ता चला जा रहा था।

अन्त में जब पादरी को कोई अन्य विकल्प न सूझा तो उसने राजा द्वारा दिये हुए घोड़े को बेच दिया और उससे जो धन प्राप्त हुआ उसको देकर उसने गुलाम को छुड़ा दिया।

इस घटना से पादरी का बहुत ही सम्मान बढ़ा और जनता की धारणा बन गई कि वास्तव में पादरी बहुत ही दयावान एवं उच्च चरित्र-युक्त व्यक्ति है—जिसने कि राजा द्वारा दिये हुए घोड़े को भी एक गुलाम के छुड़ाने हेतु बेच दिया।

संसार में प्रायः वही व्यक्ति सौभाग्यशाली समझा जाता है—जो कि राजा द्वारा सम्मानित हो परन्तु इससे भी अधिक सौभाग्यशाली वह व्यक्ति है जो कि राजा द्वारा सम्मान में दी हुई अमूल्य वस्तु का मोह न रखकर उसको भी बेचकर परोपकार में लगाने की पवित्र भावना रखता हो।

'धन्य है ऐसे व्यक्तियों को जो संसार में अपने से अधिक दूसरों के सुख-दुख के प्रति शुभ भावना रखते हैं।

त्याग से पाप का मूलधन चुकता है और दान से पाप का ब्याज।

—विनोबा

२३

लालच ने गौरव को झुकाया

सिकन्दर राजगद्दी पर वैठने के पश्चात् दिग्विजय के लिये निकला और अनेक देशो को विजय करता हुआ तुर्किस्तान पहुँचा ।

जब सिकन्दर की सेना तुर्किस्तान की सीमा पर पहुँची तो वहाँ के वजीर (मत्री) ने बादशाह को इसकी सूचना दी । राजा ने उत्तर दिया—"आने दो कोई चिन्ता की बात नही है ।"

जब सिकन्दर की सेना तुर्किस्तान की सीमा मे प्रवेश कर गई, तब भी वजीर ने राजा को सूचना दी, परन्तु वादशाह ने फिर भी वही उत्तर दिया ।

सिकन्दर की सेना आगे बढते-बढते राजधानी के निकट पहुँच गई और वजीर ने तीसरी बार वादशाह को इस सम्बन्ध मे सूचना दी, किन्तु फिर भी बादशाह ने यही उत्तर दिया कि सेना को आने दो, कोई चिन्ता की बात नही है ।

ऐसी सकटपूर्ण कठिन परिस्थिति मे भी बादशाह के मुँह से इस प्रकार का उत्तर सुनकर वजीर और प्रजा ने सोचा कि वादशाह

का मस्तिष्क ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर रहा है—क्योंकि विदेशी सेना राजधानी पर चढ़ आई है और बादशाह को इसकी कोई चिन्ता नहीं हो रही है।

अन्त में सिकन्दर राजधानी के निकट आ ही गया और उसने राजधानी पर हमले की योजना बनाई। तब बादशाह ने सिकन्दर के पास संदेश भेजा कि बादशाह आपसे मिलने के लिये आ रहा है।

बादशाह सिकन्दर से मिलने के लिये उसकी सेना के बीच गया तो सिकन्दर ने उसका आदर-सत्कार किया और सम्मान पूर्वक अपने तम्बू में ले गया।

दोनों में प्रेम-पूर्वक वार्तालाप हुआ और अत्यन्त स्नेह के वातावरण में दोनों आपस में मिले।

बादशाह ने विदा होने से पूर्व सिकन्दर को अगले दिन के लिये राज्य-कर्मचारियों सहित भोजन के लिये आमंत्रित किया। सिकन्दर ने प्रेम-पूर्वक निमन्त्रण स्वीकार किया।

अगले दिन निश्चित समय पर सिकन्दर तुर्किस्तान के राज दरबार में अपने राज्य कर्मचारियों सहित भोजन करने के लिये पहुँचा।

बादशाह ने सिकन्दर का अपूर्व सम्मान किया और आदर पूर्वक अपने राज-महल में ले गया। दोनों राजा बहुत देर तक आपस में वार्तालाप करते रहे।

भोजन के लिये सोने-चाँदी के थाल सजे हुए कपड़े से ढके हुए रखे थे। भोजन करने के लिये सिकन्दर व उसके साथी बैठे तो थालों की सजावट से बहुत प्रभावित हुए। परन्तु जैसे ही उन्होंने सजे हुए थालों से कपड़े को हटाया तो देखा कि सभी

थालो मे हीरे मोती रखे हुए है। यह देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। उस समय उनको भूख भी लग रही थी परन्तु वहाँ भोजन के स्थान पर हीरे-मोती देखकर उनको वहुत आश्चर्य हुआ।

सिकन्दर व उसके साथी अपना अपमान समझ कर तुर्क वादशाह पर क्रोधित हो गये और वुरा-भला कहने लगे।

वादशाह ने कहा—"आप भोजन कीजिये। भोजन मे क्या कमी है, आप जिस प्रकार के भोजन करने के विचार से यहाँ आये थे—वैसा ही भोजन मैंने आप लोगो के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है।"

वादशाह ने आगे कहा—"स्वादिष्ट भोजन तो ग्रीस (यूनान) मे भी आपको प्राप्त हो सकता था, आपने स्वादिष्ट भोजन हेतु हो यहाँ पधारने का कष्ट थोडा ही किया है? जिस उद्देश्य से आप यहाँ आये है वह आपका पूर्ण हो जायेगा। आप हीरे-मोतियो से भरी हुई थालियाँ ले जाइये और यदि भोजन मे कुछ कमी रह जाय तव कहना।"

वादशाह की वात सुनकर सिकन्दर व उसके साथी वहुत ही लज्जित हो गये और वहाँ से उठ-उठकर चलने लगे। कुछ व्यक्तियो ने तो उन थालो को तम्वुओ मे ले जाने का भी विचार किया परन्तु सिकन्दर ने स्पष्ट मना कर दिया।

सिकन्दर व उसके सैनिक अपने तम्वुओ मे लौट आये और दूसरे ही दिन वे चुपचाप वहाँ से कूच कर गये।

२४

'राम-नाम' की महिमा

एक पापी को अपने द्वारा किये गये पाप-कर्मों के प्रति बहुत ही पश्चात्ताप हुआ और वह इसी चिन्ता में डूबा रहने लगा कि किस प्रकार से पाप-कर्मों से मुक्ति प्राप्त की जाए।

एक दिन किसी संत ने उस व्यक्ति से कहा कि—"तुम कबीरदास के पास जाओ क्योंकि वे तुम्हारे मन की चिन्ता को शान्त कर देंगे।"

अपने दुखी मन को शान्त करने के लिये एवं पाप-कर्मों की पुनरावृत्ति न हो इस भावना से वह कबीरदास के पास गया। जब वह व्यक्ति कबीरदास के घर पर पहुँचा तो वहाँ पर कबीरदास नहीं थे। वे बाहर किसी कार्य से गये हुए थे। यहाँ तक कि घर वालों को भी यह पता नहीं था कि कबीरदास कहाँ गये हैं और कब लौटेंगे?

वह व्यक्ति निराश हो गया और रोने लगा। रोते हुए व्यक्ति को देखकर कबीरदास की पत्नी को दया आ गई और उसने पूछा कि—"आप क्यो रो रहे है ?"

वह व्यक्ति बोला—"आप भक्त कबीरदास के साथ बहुत समय से रह रही हैं, इसलिए आप कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मेरे मन की व्यथा दूर हो।"

वह उस व्यक्ति के मन की बात समझ गई और बोली—"तुम सर्वप्रथम गगा-स्नान करके आओ और उसके पश्चात् प्रतिदिन यथा-शक्ति तीन बार प्रभु का नाम जपना—इससे तुम्हारे मन के कष्ट दूर हो जायेंगे।"

पाप नष्ट करने का मार्ग ढूँढ निकालने पर वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ और उल्लास पूर्वक प्रभु का स्मरण करता हुआ चला गया।

जब वह व्यक्ति अपने घर की ओर जा रहा था, तो सयोग-वश उसको मार्ग मे कबीरदास भी मिल गये। वह व्यक्ति कबीरदास से परिचित नही था, इसलिये वे एक-दूसरे को पहचान न सके।

वह व्यक्ति 'हरिनाम' रटता हुआ जा रहा था, इसीलिये कबीरदास ने उससे उसका परिचय पूछा।

उस व्यक्ति ने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया। यहाँ तक कि कबीर की पत्नी ने जो कुछ उपाय कष्ट से मुक्ति प्राप्त करने का बतलाया था, वह भी कह सुनाया।

अपनी कष्ट-कथा सुनाकर वह व्यक्ति तो चलता बना, परन्तु कबीरदास को अपनी पत्नी के अन्ध-विश्वास पर बहुत क्रोध आया।

कबीरदास घर पहुँच कर अपनी पत्नी से बोले—"मैं संसार के अन्ध-विश्वासी व्यक्तियों को उपदेश देता हूँ परन्तु मुझे यह पता नहीं था कि स्वयं मेरे घर में अब भी इतना अन्ध-विश्वास विद्यमान है।"

कबीरदास की पत्नी को कुछ भी समझ में नहीं आया। तब कबीरदास बोले—"यहाँ आए हुए पापी को तुमने गंगा-स्नान करने व प्रतिदिन तीन बार 'राम-नाम' जपने को कहा है। इससे मुझे बहुत दुःख हुआ है।"

"प्रभु का नाम पवित्र हृदय से एक बार ही लेने से समस्त ब्रह्माण्ड का पाप नष्ट हो जाता है परन्तु खेद है कि ऐसा विश्वास मेरे घर में ही नहीं है।"

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लहहिं बिश्राम॥

—तुलसी

२५

शुभा का साहस

एक दिन शुभा नामक बौद्ध भिक्षुणी एक उद्यान की ओर जा रही थी। मार्ग मे वह अकेली ही थी और आस-पास मे कोई व्यक्ति नही था। अचानक ही एक व्यक्ति सामने से आ गया। शुभा के सुन्दर रूप को देख कर वह मोहित हो गया और मार्ग मे अकेली देख कर उसे काम-वासना का शिकार बनाने की सोचने लगा।

शुभा एक उच्च चरित्र एव धार्मिक विचारो से ओत-प्रोत विदुषी भिक्षुणी थी, इसलिए उस व्यक्ति का प्रभाव उस पर न पड सका। उस व्यक्ति ने शुभा को बहुत प्रलोभन दिये, परन्तु शुभा अपने सत्य के मार्ग से विचलित न हुई और अपने सतीत्व की रक्षार्थ उस व्यिक्त को उपदेश देने लगी।

काम-विकार से ग्रसित व्यक्ति की अच्छाई व बुराई को सोचने की शक्ति नष्ट हो जाती है और उस पर ऐसे समय मे

उपदेशों का कोई असर नहीं पड़ता है। इसी प्रकार सुभा के सुन्दर उपदेशों का उस सामान्य व्यक्ति पर कोई प्रभाव न पड़ा।

वह व्यक्ति सुभा के नयनों की ओर संकेत करके कहने लगा—"ये तुम्हारे नयन मुझे बहुत प्रिय लग रहे हैं इसलिये मैं काम-विकार से अत्यन्त पीड़ित हूँ। तुम्हारे बिना मुझे इस संसार में कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।

जब सुभा को यह विश्वास हो गया कि यह व्यक्ति किसी प्रकार से प्रभावित होने वाला नहीं है तो उसने कहा—'यदि मेरी आँखों से ही तुमको काम विकार उत्पन्न हुआ है तो यह लो मैं तुमको अपनी आँखें ही निकाल कर दे देती हूँ।

इतना कह कर सुभा ने अपनी अँगुलियों से दोनों आँखें निकाल कर उस दुष्ट व्यक्ति के सम्मुख रख दी।

सुभा के इस पवित्र एवं उच्च चरित्र से वह व्यक्ति आश्चर्य-चकित रह गया और इतना लज्जित हुआ कि वह उसी स्थान पर बहुत देर तक स्तब्ध खड़ा रहा। अन्त में उसने सुभा के चरणों में नमस्कार किया और अपने दुष्ट व्यवहार के लिये क्षमा याचना की।

"चारित्र्य वह सम्पत्ति है जो प्रेम के वातावरण से पैदा होती है।"

—रवीन्द्र

२६

कुमारपाल की दयालुता

प्राचीन काल मे देवी की उपासना एव उसे प्रसन्न करने के लिये वहुत ही पशु-वध होता था। राजा कुमारपाल के राज्य मे भी यह कुप्रथा चली आ रही थी। कुमारपाल जैन सतो के सम्पर्क मे रहा था, इसलिए वह जीव-दया का प्रवल पक्षपाती था। उसने अपने राज्य मे हिंसा का सर्वथा निपेध कर दिया था।

कटकेश्वरी देवी के मदिर मे निरीह पशुओ का नि शक वलिदान दिया जाता था। आसोज (क्वार) के महीने मे नवरात्रि के अवसर पर विशेपकर वलिदान होता था। उसी अवसर के लिये मन्दिर के पुजारी ने राजा से वलिदान के लिये वकरे, पाडे आदि का प्रवन्ध करने को कहा।

राजा इस बात को सुनकर जैन आचार्य हेमचन्द्र के पास गया। आचार्य ने राजा को कुछ राय दी। इसके पश्चात् राजा ने पुजारी को स्पष्ट कह दिया कि जैसे सदा से होता आया है वैसा ही होगा।

पुजारी के कहने पर ठीक समय पर राजा ने बकरे व पाड़े मन्दिर में भिजवा दिये। जब बलिदान का समय आया तो राजा अपने कुछ कर्मचारियों सहित मन्दिर में पहुँचा और सब बकरों एवं पाड़ों को उस मन्दिर में बन्द करके बाहर पहरा बैठा दिया।

दूसरे दिन राजा ने स्वयं वहाँ पहुँचकर मन्दिर का ताला खोला तो सभी पशु सकुशल थे। राजा ने पुजारी से कहा कि—"देखो यदि देवी की इच्छा इन मूक पशुओं को खा-जाने की होती तो अवश्य ही खा जाती परन्तु उसने एक भी पशु को नहीं खाया है। इससे स्पष्ट है कि देवी को मांस भक्षण अच्छा नहीं लगता है। हाँ उपासकों को मांस भक्षण अच्छा लगता है जो कि देवी के नाम पर स्वयं अपना काम बनाते हैं।"

राजा ने सभी पशुओं को छोड़ दिया और फल-फूल मिष्ठान से देवी की पूजा की।

कुछ समय के पश्चात् राजा के शरीर में कुष्ट रोग हो गया। राजा के मंत्री तथा पुजारी आदि सभी प्रमुख व्यक्ति यह कहने लगे कि देवी का बलिदान बन्द करने से ही यह सब कुछ हुआ है परन्तु राजा ने किसी की भी बात का विश्वास नहीं किया। राजा ने सब राज्य-कर्मचारियों के कहने पर भी फिर से बलिदान प्रारम्भ नहीं किया।

राजा ने कहा—" निर्दोप पशुओ की हिंसा करके मैं अपने प्राण नही बचाना चाहता हूँ। मेरे शरीर की बलि हो सकती है, परन्तु पशुओ की बलि मेरे जीते-जी मेरे राज्य मे नही हो सकती है।

भक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी दया की महत्ता के सम्बन्ध मे कहा है —

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोडिये, जब तक घट मे प्रान ॥

२७

जनक और अनासक्ति

एक समय मुनि याज्ञवल्क्य किसी अरण्य में राजा जनक और अन्य शिष्यों को पढ़ाया करते थे। यदि किसी कारण से राजा जनक को वहाँ आने में विलम्ब हो जाता था तो महर्षि पाठ प्रारम्भ नहीं करते थे और जब जनक आ जाते तभी पढ़ाना प्रारम्भ करते थे। और यदि अन्य किसी शिष्य को कुछ विलम्ब हो जाए तो पढ़ाना प्रारम्भ कर देते थे।

महर्षि के इस पक्षपातपूर्ण व्यवहार से सभी शिष्य असन्तुष्ट रहते थे और गुरु की निन्दा करते थे।

एक दिन किसी शिष्य ने अपने साथियों से वार्तालाप करते हुए कहा कि गुरु जी दर्शन-शास्त्र की बहुत बड़ी-बड़ी बातें करते हैं और कहते हैं कि संसार की किसी भी वस्तु के लिये आसक्ति नहीं रखनी चाहिए परन्तु स्वयं उसका पालन नहीं करते हैं। जनक को यदि आने में विलम्ब हो जाता है तो उसके लिये प्रतीक्षा करते हैं और जब तक वह न आ जाए तब

तक पाठ प्रारम्भ नहीं करते है। परन्तु यदि हम लोगो मे से किसी को विलम्ब हो जाए तो तुरन्त पाठ प्रारम्भ कर देते हैं। आखिर, राजा तो राजा ही न। महर्षि के कानो मे यह बात पहुँच गई।

एक दिन महर्षि ने इस बात का उत्तर देने के लिये और विद्यार्थियो का असन्तोष दूर करने के लिये एक युक्ति सोची। एक दिन जब मुनि शिष्यो को उपदेश दे रहे थे, तो बीच मे ही आत्मा के सम्बन्ध मे उपदेश देने लगे। अपने योग के बल से उन्होंने सभी शिष्यो को दिखलाया कि मिथिला जल रही है और चिनगारियां ऊपर उड रही हैं। इस दृश्य को देखकर जनक के अतिरिक्त सभी विद्यार्थी अपने घर-गृहस्थी के सामान की रक्षार्थ भाग खडे हुए, परन्तु जनक वही पर बैठा रहा।

जब मुनि ने देखा कि जनक एकाग्र-मन से उपदेश श्रवण कर रहा है, तो उन्होंने फिर जनक से कहा कि तुम्हारी मिथिला जल रही है।

जनक ने कहा—"आप उपदेश चालू रखिये। यदि मिथिला जल कर राख भी हो जाए तो जनक की कोई भी हानि होने वाली नही है। क्योकि मैं जिस वस्तु को मूल्यवान समझता हूँ वह तो मेरे पास ही है, बाहर नही है।"

मुनि बराबर जनक को पाठ पढाते रहे। जब अन्य शिष्यो को यह मालूम पडा कि गुरु जी ने हमे मूर्ख बनाने व हमारी परीक्षा लेने के लिये ही यह युक्ति सोची है तो वे शीघ्र ही वापिस आ गये और बहुत ही लज्जित हुए।

जब सभी शिष्य वापिस आ गये तो मुनि ने सबको कहा— 'मिथिला नहीं जल रही थी यह तो तुम्हारी परीक्षा लेने हेतु भ्रम उत्पन्न किया गया था। अब आप लोग समझ गये होंगे कि जनक में और आप लोगों में कितना बुद्धि-भेद है। इसी कारण से मैं भी जनक का पक्ष लेता हूँ।"

जनक के धैर्य एवं आत्म-विश्वास से सभी विद्यार्थी बहुत प्रसन्न हुए और सभी उसका आदर करने लगे।

"अनासक्ति की कसौटी यह है कि फिर उस वस्तु के अभाव में हम दुःख का अनुभव न करें।"

—हरिभाऊ उपाध्याय

२८

हकीम लुकमान और वादशाह

हकीम लुकमान ससार प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ है। उसका रहन-सहन वहुत ही साधारण था और देखने मे भी वह वहुत ही साधारण-सा व्यक्ति प्रतीत होता था, परन्तु उसका चिकित्सा-ज्ञान इतना अधिक था कि वह ससार प्रसिद्ध व्यक्ति हो गया।

एक वार वादशाह ने लुकमान की योग्यता की परीक्षा लेने हेतु उसे अपने पास बुलाया और उससे अनेक प्रश्न पूछे। प्रश्नो के सतोपजनक उत्तर पाकर वादशाह को विश्वास हो गया कि वास्तव मे लुकमान एक विद्वान् व्यक्ति है। वादशाह उसकी योग्यता पर वहुत प्रसन्न हुआ और उसे विश्वास हो गया कि लुकमान की समानता करने वाला दूसरा कोई भी व्यक्ति हमारे राज्य मे नहीं है।

बादशाह मुक्माम से इतना प्रभावित हो गया कि उससे इच्छित वस्तु माँगने को कहा और यह भी स्पष्ट कर दिया कि इस समय जो कुछ भी आप माँगेंगे मैं अवश्य ही दे दूंगा।

मुक्माम बादशाह के शब्द सुन कर एकदम क्रोधित हो उठा और बोला—"बादशाह तुमको शर्म नहीं आती है? क्या तुम मुझे दया का पात्र समझ बैठे हो और अपने को बहुत बड़ा दयालु मान बैठे हो? मैंने अभिमान और दुनिया के लोभ को इस प्रकार अपने अधिकार में कर लिया है कि वे अब मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते हैं। अभिमान और लोभ तो मेरे यहाँ सेवक की भाँति कार्य करते हैं। इसलिए मैं स्वयं बादशाह से भी बढ़कर हूँ और तुम जो कि लोभ और अभिमान के वश में होकर सांसारिक ऐश्वर्य और सत्ता के पीछे भटकते फिरते हो, मेरे लिए एक भिखारी के समान हो।

मुक्माम ने आगे कहा—"तुम इस सांसारिक सुख के लिये दूसरे देशों पर चढ़ाई करते हो और वहाँ के अनेक व्यक्तियों का निरर्थक खून करते हो। हजारों बहनों को विधवा बनाकर उनका दाम्पत्य जीवन नष्ट करते हो परन्तु फिर भी तुमको कभी संतोष नहीं होता है।

" लो! मैं अब माया और लोभ को अपने अधिकार में रखता हूँ और सदा ही ये मेरे चाकर बनकर रहते हैं, परन्तु आपके ऊपर अब माया और लोभ का अटल साम्राज्य है और इनके वशीभूत होकर तुम अपना जीवन व्यतीत कर रहे हो।

शहंशाह! अब बोलो बादशाह कौन है? दया के पात्र तुम हो या मैं? धन की इच्छा तुम को है या मुझे?"

बादशाह अब बहुत लज्जित हो गया था और बिना कुछ आगे सुने लुकमान के पैरो पर गिर पडा और अपने द्वारा प्रदर्शित मिथ्या-अभिमान की क्षमा मांगी।

Whenever man commits a crime, heaven finds a witness

—Bulwer

२९

द्रौपदी का क्षमा-दान

महाभारत का युद्ध अपने अन्तिम समय में था। दुर्योधन की सभी इच्छाओं पर पानी फिर गया था और वह बहुत ही प्रबल इच्छुक था कि किसी प्रकार पांडवों से अपना बदला ले। परन्तु उसे प्रतिकार का कोई आधार दिखलाई नहीं दे रहा था। यहाँ तक कि पांडवों को परास्त करने के लिये वह किसी की भी सहायता लेने का बहुत ही इच्छुक था।

उसी समय अश्वत्थामा (राजगुरु द्रोणाचार्य का पुत्र) नामक व्यक्ति उसके पास आया और उसने दुर्योधन को धीरज बँधाया। उसने दुर्योधन से सेनापति बनाने का आग्रह किया तो उसे सेनापति बना दिया गया। अश्वत्थामा ने दुर्योधन से कहा कि जब तक मैं पांडवों को नष्ट ही कर दूं गा तब तक मुझे शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। उसके इस कथन एवं दृढ़-प्रतिज्ञ होने से दुर्योधन का भी साहस बढ़ गया।

एक बार रात के समय अवसर पाकर अश्वत्थामा पांडवो के शिविर की ओर गया। मार्ग मे उसे बहुत सी विघ्न-बाधाओ का सामना करना पडा, परन्तु फिर भी वह अपनी धुन मे पाण्डव-शिविर के निकट पहुँचने मे सफल हो ही गया।

शिविर मे उस समय पांडव तो थे नही, केवल उनके पाँच पुत्र सो रहे थे। उनकी आकृति भी पांडवो के समान ही प्रतीत होती थी, इसी भ्रम वश अश्वत्थामा ने उनको पांडव समझा और उस समय वह वहाँ अधम, चोर, लुटेरा व खून का प्यासा बनकर गया था, इसलिए उसे इतना सोचने का सुअवसर ही प्राप्त नही हुआ कि वह ठीक प्रकार तो देख ले कि जिन पर प्रहार करने वाला है, वे वास्तव मे पांडव भी है या नही।

अश्वत्थामा ने निर्दयतापूर्वक पांडवो के पाँचो पुत्रो के सिर उडा दिये और प्रसन्नता पूर्वक अपनी विजय पर गर्व करता हुआ पाँचो सिरो को लेकर दुर्योधन के पास पहुँचा। दुर्योधन भी अश्वत्थामा की अपूर्व विजय पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने पाँचो सिरो को अपमान-पूर्वक पृथ्वी पर डाल दिया और पैरो से ठोकरें मारी। परन्तु जब दुर्योधन ने ध्यान-पूर्वक उनके मुख की ओर देखा, तो उसे यह जानते हुए देर न लगी कि ये पांडव न होकर उनके पुत्रो की निर्मम हत्या हो गई है और इस प्रकार उसके मन मे अपार दु ख हुआ।

दुर्योधन ने अश्वत्थामा से कहा—"नराधम ! तुमने महान् अनर्थ किया है, क्योकि तुमने हमारे पीछे कोई नाम लेने वाला भी नही छोडा है। तुम पांडवो के नही, बल्कि उनके पुत्रो के सिर काट कर लाये हो। पांडवो का सिर काटना कोई सहज कार्य नही है—यह मैं भली-भांति समझता हूं। हाय देव ! अब मैं अपने इन

पाप-कर्मों से किस प्रकार निष्कलंक हो सकूंगा। अभी-अभी मैं पांडवों के नष्ट होने की सूचना से हर्षित हो रहा था परन्तु अब कुल-नाश के शोक से व्याकुल हो रहा हूँ।"

जब यह सूचना पांडवों तक पहुँची तो हा-हाकार मच गया। जिसने भी इस समाचार को सुना वही इस प्रलयकारी समाचार से व्याकुल हो उठा।

द्रौपदी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और मरणासन्न हो गई। उसका विलाप सुनकर पत्थर हृदय भी पिघल गये।

जब द्रौपदी को यह ज्ञात हुआ कि यह दुष्कर्म अश्वत्थामा का है तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। द्रौपदी ने पांडवों से कहा कि 'जब तक आप लोग उस दुष्ट को पकड़ कर मेरे सम्मुख नहीं लाओगे तब तक मैं यहाँ से न उठूँगी और यदि उसके पकड़ने में अधिक विलम्ब हो गया तो मैं अपने प्राण इसी स्थान पर त्याग दूँगी।

द्रौपदी के असह्य दुःख को देखकर पांडवों की भुजाएँ फड़क उठीं और वे बिना सोचे-विचारे ही अश्वत्थामा को पकड़ने के लिये चल दिये। सर्वप्रथम भीम अश्वत्थामा को पकड़ने के लिये चला और युधिष्ठिर ने उसके पीछे अर्जुन व श्रीकृष्ण को भी भेज दिया।

क्योंकि अश्वत्थामा कोई साधारण सैनिक नहीं था बल्कि रण-विद्या के आचार्य—गुरु द्रोण का पुत्र था इसलिए उसके रण-कौशल को विफल करना भीम की सामर्थ्य के बाहर की बात थी। अतः अश्वत्थामा को परास्त करने और पकड़ने के लिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपयुक्त समझकर यह कार्य भार सौंपा।

अश्वत्थामा और अर्जुन के बीच घमासान युद्ध हुआ। दोनो ओर से अनेक अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग किया गया। अन्त मे अश्वत्थामा पराजित हुआ और उसको पकडकर द्रौपदी के सम्मुख लाया गया।

अश्वत्थामा बहुत लज्जित था और द्रौपदी के सम्मुख नीची गर्दन किये खडा था। उसे यह निश्चय हो गया था कि अब मेरे प्राण बचने वाले नही है और कुछ ही क्षणो मे मेरे प्राण पखेरू उड जायेंगे।

द्रौपदी ने तीक्ष्ण दृष्टि से अश्वत्थामा को नीचे से ऊपर तक देखा। एक बार के देखने से ही उसकी मनोदशा एकदम बदल गई। उसका क्रोध शान्त हो गया और हृदय मे दया का सागर उमड आया।

द्रौपदी ने पांडवो से कहा कि इस कायर को छोड दो। प्राण-दण्ड इसके लिये उपयुक्त दण्ड नही है, क्योकि इसके मारने से मेरे पुत्र फिर से जीवित नही हो सकते है, फिर इसको मृत्यु दण्ड क्यो दिया जाए ?

फिर दूसरी बात यह है कि यह अपने गुरु का पुत्र है। इसने मेरे पांच पुत्रो को अवश्य मारा है और मैं अपार दु ख भी पा रही हूँ, परन्तु फिर भी इसके मारने से गुरु पत्नी को महान् शोक होगा और जिस प्रकार मैं अपने पुत्रो के शोक मे डूबी हूँ, इसी प्रकार गुरु-पत्नी भी महान् कष्ट का अनुभव करेंगी। मेरे कष्ट के कारण से किसी अन्य को कष्ट मिले—यह मुझे सहन नही है, इसलिए मैं इसे क्षमा करती हूं।

पांडवो ने द्रौपदी के विचारो को सुनकर अश्वत्थामा को छोड दिया और वह चुपचाप वहाँ से चला गया।

द्रौपदी के इस क्षमादान की सूचना चारों तरफ फैल गई और जिसने भी सुना उसने ही मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

Mercy is an attribute to God himself, and earthly power doth then show likest God's when mercy seasons justice.

Shakespeare

30

आदर्श का प्रदर्शन

ग्रीस का एक महान् तत्त्ववेत्ता सर्वदा साधारण व मलिन वस्त्र पहनता था और व्यर्थ मे साधारण जीवन व्यतीत करने का ढोग रचकर अपने आपको सत पुरुषो मे गिनता था।

वह सदा ही मलिन व फटे हुए वस्त्र पहनता था और अपने इस साधारण व त्यागमय जीवन का ढिढोरा सब जगह पीटता था। जहाँ भी उसे कुछ कहने का अवसर मिलता, वह अपनी खूब प्रशसा करता था।

वह समझता था कि मेरे इस कार्य से सभी मेरी इज्जत करते है और मेरे आदर्शमय जीवन से शिक्षा लेते हैं। परन्तु लोगो पर उसका उल्टा ही प्रभाव पडा। सभी व्यक्ति उसकी प्रकृति को समझ गये और वे अच्छी प्रकार मे अवगत हो गये कि यह केवल दिखावे मात्र के लिये ही इस प्रकार का ढोग किये हुए है।

एक दिन जब वह विद्वान् अपनी प्रशंसा कर रहा था तो सोक्रेटीज (सुकरात) इस बात को सहन न कर सका और सभी व्यक्तियों के बीच में उससे कहा— 'इसे साधारण व आदर्शमय जीवन नहीं कहते हैं। साधारण व आदर्शमय जीवन दूसरों के दिखलाने व उनके सम्मुख प्रशंसा के लिए नहीं होता है। इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने से तो आपका अहंकार ही प्रतीत होता है। आपको इस बात का बहुत अहंकार है कि मैं बहुत सादा व आदर्शमय जीवन व्यतीत करता हूँ।

सोक्रेटीज की बात सुनकर वह तत्ववेत्ता बहुत ही लज्जित हुआ और उसने सदा के लिये अपनी प्रशंसा करने की आदत त्याग दी।

आत्म-प्रशंसा—ओछेपन का चिह्न है।

—महात्मा गाँधी

३१

स्वावलम्बन भी सीखिए

ग्रीस देश मे किलयेनथिस नामक एक युवक था जो कि कुश्ती लडने व मुक्केवाजो मे बहुत प्रसिद्ध था। वह अच्छे अच्छे पहलवानो को भी पराजित कर देता था।

कुछ दिनो के पश्चात् उसे अपने इस कार्य से घृणा हो गई और उसे दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने की धुन सवार हुई।

उस समय झीनो नामक दर्शनशास्त्री बहुत-ही प्रसिद्ध था, इसलिए किलयेनथिस उसके पास ही दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने के लिये पहुँचा। उस समय किलयेनथिस की दशा बहुत ही दयनीय थी। उसके सभी कपडे फटे हुए थे और केवल छ आने ही उसकी जेव मे थे। वह पढने मे बहुत ही चतुर था और सभी विद्यार्थियो से अधिक जानकारी रखता था। इस कारण से अन्य विद्यार्थी उससे ईर्ष्या करने लगे थे।

अन्य विद्यार्थी यह भी शका करने लगे थे कि किलयेनथिस के पास पहनने के लिये कपडे तक भी नही है, फिर यह स्कूल की

फीस कहाँ से लाता है ? इस प्रकार का विचार करके सभी विद्यार्थियों ने उसके विरुद्ध चोरी का गम्भीर आरोप तैयार किया और न्याय के लिये उसे न्यायालय में ले गये।

न्यायाधीश ने केसमेनविस से पूछा—"तुम स्कूल की फीस कहाँ से लाते हो जब कि तुम्हारे पास पहनने तक को कपड़े भी नहीं हैं।

न्यायाधीश की बात सुनकर क्लिनेनविस ने विनय-पूर्वक उत्तर दिया कि—"मैं निर्दोष हूँ और मेरे ऊपर चोरी का जो आरोप लगाया गया है, वह निराधार एवं झूठा है, और इस आरोप को असत्य प्रमाणित करने के लिये मैं दो गवाहों को न्यायालय में उपस्थित करना चाहता हूँ।' न्यायाधीश ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

क्लिमेनविस ने अपने ऊपर लगाये गये आरोप को असत्य प्रमाणित करने के लिये दो साक्षी प्रस्तुत किये। पहला साक्षी माली था जिसने अपने बयान में कहा कि—"यह व्यक्ति प्रतिदिन मेरे यहाँ बाग में आकर कुँए से पानी खींचता है और इसके बदले में मैं इसे कुछ मजदूरी के पैसे देता हूँ।

दूसरा साक्षी एक विधवा थी जिसने गवाही देते हुए कहा कि—"मैं एक वृद्ध महिला हूँ, इसलिए घर का सम्पूर्ण कार्य करने में मैं असमर्थ हूँ। यह युवक मेरे कार्य में हाथ बटाता है और इसके परिश्रम के अनुसार मैं इसे कुछ पैसे दे देती हूँ। इस प्रकार अपने कठोर परिश्रम से प्राप्त मजदूरी द्वारा ही यह अपना अध्ययन-क्रम चलाता है।"

दोनों साक्षियों की तथ्यपूर्ण गवाही से न्यायाधीश सन्तुष्ट हो गया और केसमेनविस के कठोर परिश्रम एवं आत्म-बल के कारण

वहुत प्रभावित हुआ और प्रसन्न होकर उसको छात्रवृत्ति के रूप मे कुछ आर्थिक सहायता देना भी स्वीकार किया जिससे कि इस युवक को अपना अध्ययन चलाने के लिए मजदूरी न करनी पडे और इसका अध्ययन-क्रम विना किसी अडचन के निरन्तर चलता रहे।

परन्तु किलयेनथिस स्वाभिमानी था। उसको अपने परिश्रम का पैसा ही पसद था, इसलिए उसने न्यायाधीश की सहायता को स्वीकार करने मे अनिच्छा प्रकट की।

किलयेनथिस ने कहा—"श्रीमान्! परिश्रम से जो आय होगी, उसी से अपना अध्ययन-क्रम चलाऊँगा। किसी से दान लेने की मेरी इच्छा नही है।"

इस प्रकार किलयेनथिस ने अपने चरित्र-वल एव सत्य-निष्ठा के कारण अपने विरोधियो को नीचा दिखला दिया और वे वहुत ही लज्जित हुए। इस कार्य से किलयेनथिस की प्रतिष्ठा निरन्तर वढती ही चली गई और वह अपने जीवन-सग्राम मे एक वीर योद्धा की भाँति सभी प्रकार की विघ्न-वाधाओ को पार करता हुआ निरन्तर आगे वढता रहा।

इस प्रकार वह अपने जीवन मे उन्नति के शिखर पर चढ गया और ससार के सम्मुख एक महान् आदर्श प्रस्तुत किया—जिससे कि अन्य व्यक्ति इस प्रकार के कार्यों का महत्त्व समझें और उन पर चलकर अपने जीवन को प्रगतिशील वनाएँ।

३२

अज्ञानता का ज्ञान

प्राचीन काल में ग्रीस देश में डेल्फी नामक एक नगर था जिसमें एक बहुत बड़ा मन्दिर था। उस मन्दिर की बहुत बड़ी प्रतिष्ठा थी और अनेक भक्तजन प्रतिदिन दर्शनार्थ वहाँ आते थे।

वहाँ की जनता को यह पूर्ण विश्वास था कि मन्दिर की पुजारिन के शरीर में देवता प्रवेश करता है और उस समय वह जो कुछ भी कहती है वह सत्य होता है—सभी की ऐसी निश्चित धारणा बन गई थी।

एक बार किसी विद्यार्थी ने पुजारिन से पूछा कि—"संसार में सोक्रेटीज (सुकरात) से अधिक योग्य व्यक्ति कौन है?"

पुजारिन ने उत्तर दिया—"कोई नहीं।

जब इस बात की सूचना सोक्रेटीज को लगी तो वह असमंजस में पड़ गये और सोचने लगे कि ऐसी क्या बात है जिसके कारण

पुजारिन ने मुझे संसार का सबसे योग्य व्यक्ति बतलाया है ? इस सम्बन्ध मे उन्होंने खूब गहराई से विचार किया और अन्त मे उनको समाधान मिल गया।

सोक्रेटीज ने सोचा कि मेरे और दूसरे व्यक्तियो के बीच केवल इतना ही अन्तर है कि मैं स्वय की अज्ञानता का ज्ञान रखता हूँ और बिना हिचकिचाहट के अज्ञानता को स्वीकार करता हूँ, जबकि दूसरे व्यक्ति अपने को सर्वज्ञ समझ कर अपनी अज्ञानता पर कभी भी विचार नही करते, और स्वय के सर्वज्ञ होने का मिथ्याभिमान करते हैं।

बस, यही कारण है कि पुजारिन ने मुझे सबसे योग्य व्यक्ति कहा है।

इस घटना से यह निष्कर्ष निकलता है कि—"जो व्यक्ति स्वय की अज्ञानता को पहचानता है, वही वास्तव मे सच्चा ज्ञानी और योग्य व्यक्ति है।"

अज्ञान को ज्ञान ही मिटा सकता है।

—शंकराचार्य

३३

वीर रस का प्रभाव

नेपोलियन ने ५ वर्ष की अवस्था में ही ज्ञान विद्या सीखना आरम्भ कर दिया था। उसने १ वर्ष की आयु में स्कूल में प्रवेश किया और वहाँ पर गणित इतिहास आदि विषयों में प्रवीणता प्राप्त की। इसके साथ ही उसने होमर कवि का रचा हुआ वीर रस का काव्य भी पढ़ा। इस काव्य को नेपोलियन ने बहुत ही रुचिपूर्वक पढ़ा। इस काव्य के अध्ययन से उसके मन में वीरता के भाव प्रकट हुए।

विद्यार्थी अवस्था में ही नेपोलियन का साहस व बल बहुत बढ़ गया था। एक बार उसने पत्र द्वारा अपने माता-पिता को लिखा था कि— 'यदि मेरी कमर में तलवार और जेब में होमर का काव्य हो, तो संसार में कहीं भी मैं स्वयं अपना रास्ता बना सकता हूँ।”

नेपोलियन ने वीर रस के अन्य कवियों का भी काव्य रुचि-पूर्वक पढ़ा था। इससे वह भली-भाँति समझ गया था कि ग्रीस व

रोम के सम्राटो ने वीर रस के कारण ही अनेको विजय एव पराजय देखी हैं। इसलिए नेपोलियन को पूर्णतया विश्वास हो गया था कि देश मे अनेक चारण-भाट हैं जो कि इस रस के द्वारा ही योद्धाओ एव सम्राटो के हृदय मे वीरता का सचार करते हैं।

इसी विचार से प्रेरित होकर नेपोलियन ने प्रारम्भिक अवस्था से ही वीर रस से युक्त कविताओ का अवलोकन एव गहन अध्ययन किया। इस प्रकार के अध्ययन द्वारा उसके अन्दर साहस एव वीरता का सचार हुआ और उसने ससार मे अपनी वीरता से अनेक कार्य कर दिखलाये।

वीरता मारने मे नहीं है, मरने मे है, किसी की प्रतिष्ठा बचाने में है, प्रतिष्ठा गँवाने मे नहीं।

—महात्मा गाधी

३४

नेपोलियन का परिश्रम

पन्द्रह वर्ष की छोटी आयु में ही नेपोलियन एक प्रसिद्ध सैनिक विद्यालय में प्रविष्ट हुआ और उसे इस प्रकार की शिक्षा में विशेष लगन और उत्साह भी था। प्रारम्भ से ही वह वीर रस की कहानियाँ व कथाएं पढ़ा करता था इसलिए उसका साहस बहुत बढ़ गया था।

उस विद्यालय में लगभग राजा-महाराजाओं एवं सम्पन्न कुल के लड़के ही प्रविष्ट हो सकते थे। इस प्रकार स्कूल की ओर से सभी विद्यार्थियों की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता था। यहाँ तक कि उनके घोड़ों व हथियारों की सफाई आदि के लिये भी अलग से कर्मचारी रखे हुए थे। इसके अतिरिक्त, कर्मचारी विद्यार्थियों की सुख-सुविधा का भी खूब ध्यान रखते थे।

नेपोलियन को ऐसा विलासी जीवन तनिक भी पसंद नहीं था। वह कभी भी इस बात के लिए सहमत नहीं था कि एक बहादुर सिपाही के लिए इन आमोद-प्रमोद और विलासिता

की वस्तुओ की भी आवश्यकता है। नेपोलियन को वहाँ का रहन-सहन अच्छा नही लगा।

एक दिन नेपोलियन ने स्कूल के अधिकारियो को कडा विरोध पत्र लिखा, जिसमे स्पष्ट लिख दिया कि—"जब इस स्कूल मे सभी वीर और बहादुर विद्यार्थी पढते है, तो फिर उनकी सेवा-सुश्रूषा के लिये इतने कर्मचारी क्यो रखे हुए हैं ? इस प्रकार की विलासिता की वस्तुओ की विद्यार्थियो को क्या आवश्यकता है, जो कि यहाँ पर उनके लिये विशेष रूप से सग्रहित की हुई है।"

उसने आगे लिखा कि—"नौकरो द्वारा जो घोडो व हथियारो की सफाई का प्रबन्ध है, वह विद्यार्थियो को स्वय करना चाहिए। यदि विद्यार्थियो को अभी से परिश्रम करने व कष्ट-सहन का अभ्यास नही कराया जाएगा, तो इस स्कूल से निकलने वाले वीर—युद्ध-क्षेत्र मे किस प्रकार कष्ट उठा सकेंगे।"

नेपोलियन के विचारो से विद्यालय के प्रबन्धक व अधिकारी बहुत ही प्रभावित हुए और उसके सुझाव के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। इसका फल यह हुआ कि उस सैनिक विद्यालय से जो भी विद्यार्थी शस्त्र-विद्या सीखने के पश्चात् निकले, वे पूर्व की अपेक्षा अधिक साहसी व सहनशील थे और सदैव अपने उद्देश्य मे सफल रहे।

Without labour nothing is prosperous

—Sophocles

३५

बिना भक्ति ज्ञान अधूरा

महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर नामक एक महान् सन्त हुए हैं जो अपनी ज्ञान-गरिमा के प्रताप से जनता द्वारा बहुत ही सम्मानित किये जाते थे। उन्होंने गीता पर सुन्दर व सरल भाषा में टीका भी लिखी है।

ज्ञानेश्वर ने अपने निरन्तर प्रयत्न एवं परिश्रम से ज्ञान का भंडार संचित किया था परन्तु भक्ति का अभाव था जिसको उन्होंने एक भक्त के सत्संग से प्राप्त किया।

एक बार ज्ञानेश्वर ने अपने समकालीन नामदेव नामक संत से कहा कि— "मेरी इच्छा आपके साथ तीर्थ-यात्रा करने की है।"

प्रत्युत्तर मे नामदेव ने कहा कि— "मैं स्वयं इस सम्बन्ध मे स्वीकृति नही दे सकता हूँ। मुझे मन्दिर के अन्दर जाकर ठाकुर जी की स्वीकृति लेनी पड़ेगी तभी मैं आपको साथ लेकर चलने की अनुमति दे सकता हूँ।

ऐसा कहकर दोनों सन्त ठाकुरद्वारे के अन्दर गये और ठाकुर जी से विनय पूर्वक आज्ञा मांगी। अपने इष्टदेव की आज्ञा लेते समय नामदेव की आंखों में आंसू थे।

याचना करते समय जिस प्रकार एक दीन व्यक्ति की आंखों में अश्रु आ जाते है, उसी प्रकार नामदेव ने अपने को तुच्छ और दीन समझते हुए अपने इष्टदेव से प्रार्थना की और भक्ति-भाव में इतने आत्म-विभोर हो गये कि याचना करते ही उनकी आंखों में प्रेमाश्रु आ गये।

ज्ञानदेव तो शुष्क हृदय थे ही, इसलिए उनकी आंखों में अश्रु का काम क्या था? ज्ञानदेव समझ गया कि नामदेव के हृदय में प्रभु की गहन भक्ति एवं अगाध श्रद्धा है।

ज्ञानदेव और नामदेव—दोनों तीर्थ-यात्रा को गये। ज्ञानदेव अपने ज्ञान का उपदेश देते थे और नामदेव अपनी श्रद्धा एवं भक्ति का प्रवचन। कुछ ही दिनों के सत्संग से ज्ञानदेव पर नामदेव की श्रद्धा-भक्ति का प्रभाव दिखलाई देने लगा और वह भी श्रद्धालु एवं भक्त बन गये।

इस प्रकार ज्ञान के साथ भक्ति का भाव आ जाने पर "सोने में सुगन्ध" वाली कहावत चरितार्थ हो गई और ज्ञानदेव जो कि केवल शुष्क ज्ञान को लेकर ही अहंकार के घोड़े पर सवार रहते थे, भक्ति का संसर्ग होते ही बहुत विनयशील व नम्र विचारों के व्यक्ति हो गये और उन्होंने अपने ज्ञान एवं भक्ति से स्वयं अपने जीवन का कल्याण किया और अन्य व्यक्तियों को भी अपने उच्च विचारों से लाभान्वित किया।

३६

सत्यता में ब्रह्मत्व

जाबाल नामक दासी के गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम सत्यकाम रखा गया। सत्यकाम का मन अध्ययन एवं धार्मिक विचारों की ओर अधिक लगता था। इसलिए उस बालक ने महर्षि गौतम के पास धर्म-शास्त्रों का अध्ययन करने का निश्चय किया।

एक दिन सत्यकाम महर्षि गौतम के पास पहुँचा और विनय पूर्वक प्रणाम करके अपनी इच्छा प्रकट की।

महर्षि ने उससे पूछा—"तुम कौन हो तुम्हारा क्या गोत्र है?"

सत्यकाम बोला—"मेरा नाम सत्यकाम जाबाल है परन्तु मेरा गोत्र क्या है इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है।"

महर्षि ने उस बालक से कहा— "अध्ययन करने से पूर्व अपने घर से गोत्र के सम्बन्ध में पूछकर आओ तभी तुम्हारे अध्ययन की व्यवस्था की जायेगी।"

सत्यकाम के मन मे अध्ययन की तीव्र इच्छा थी, इसलिए वह सीधा अपनी माता के पास पहुँचा और अपने गोत्र के सम्बन्ध मे पूछने लगा।

माता ने कहा—"तेरे पिता का गोत्र क्या है, इसका मुझे भी पता नही है। मेरा नाम जाबाल है और तुम्हारा सत्यकाम। अत कोई भी इस सम्बन्ध मे पूछे तो कहो कि—मैं सत्यकाम जाबाल हूं।"

अब की बार सत्यकाम ने महर्षि गौतम के पास जाकर यथा-तथ्य बात कही। महर्षि ने जब सत्यकाम की बात सुनी, तो उनको विश्वास हो गया कि ब्राह्मण के अतिरिक्त इतनी सरलता-पूर्वक सच्ची बात दूसरा कोई नही कह सकता है। इस प्रकार महर्षि ने उसे ब्राह्मण जान कर उसका यज्ञोपवीत सस्कार कराया और उसे अपना शिष्य स्वीकार किया। शैक्षणिक कार्यक्रम मे सत्यकाम को ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश भी दिया।

सत्यकाम ने गुरुजी के पास परिश्रम एव लग्न-पूर्वक अध्ययन किया और समुचित ज्ञान प्राप्त किया। गुरुजी ने भी उसकी लगन से प्रसन्न होकर उसे प्रेम-पूर्वक विद्याध्ययन कराया। इस प्रकार सत्यकाम जाबाल बहुत बडा विद्वान् हुआ और जाबाल महर्षि के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

३७

सङ्कट में भी उदारता

अपने भाई की मृत्यु के पश्चात् अल्फ्रेड इंग्लैण्ड का राजा हुआ। उस समय बहुत से डेनमार्क निवासी इंग्लैण्ड में बसे हुए थे और उन्होंने सम्पूर्ण देश में विद्रोह की आग भड़का रखी थी। उनका उद्देश्य लूटमार और सुरक्षा एवं शान्ति को भंग करना था इसीलिए वे उस देश में आये थे।

डेनमार्क वालों ने अल्फ्रेड के समय में भी अपने विघटनकारी कर्मों को चालू रखा और इधर-उधर कुछ गाँवों में आग लगा दी। उनके इस दूषित कार्य से सम्पूर्ण देश में त्राहि त्राहि और हा-हाकार मच गया। अनेक व्यक्ति इस स्थिति से बहुत भयभीत हो गये और राजा से इस सम्बन्ध में शिकायत करने लगे।

अल्फ्रेड तो पहले से ही इस कार्य के विरोध में था और उचित अवसर पाकर इस अनिष्ट कार्य का अंत करना चाहता था। उसने इस विद्रोह का अन्त करने का बीड़ा उठाया और एक विशाल सेना संगठित की।

डेनमार्क वाले भी बहुत ही बलवान एव लडाकू व्यक्ति थे। वे लोग कभी भी सग्राम मे पीछे हटना नही जानते थे। उनको अपने बाहुबल पर बहुत भरोसा था।

दोनो ओर से युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध मे जब अग्रेज सेना कुछ पीछे हटने लगी, तो विद्रोहियो का साहस बढ गया और वे शेर की तरह सेना पर टूट पडे। इस प्रकार डेनमार्क वालो ने ऑलफ्रेड को पूर्णतया परास्त कर दिया।

ऑलफ्रेड अपनी पराजय स्वीकार करके प्राण-रक्षा के लिए अथेलिनी के किले मे छिप गया। उस समय ऑलफ्रेड की दशा बहुत ही खराब थी। जिस प्रकार मेवाड की स्वतत्रता और राजपूतो की प्रतिष्ठा के लिये महाराणा प्रताप को जो भयकर कष्ट उठाना पडा था, उसी प्रकार ऑलफ्रेड को भी उठाना पडा।

ऑलफ्रेड के पास बहुत ही कम सैनिक बचे थे और खाने-पीने का सामान भी समाप्ति पर था। यहाँ तक कि एक दिन ऐसा भी आ गया कि ऑल्फ्रेड के पास खाने की सामग्री बिल्कुल समाप्त हो गई और इस प्रकार कई दिन राजा को बिना भोजन के ही रहना पडा।

ऐसी भयकर परिस्थिति मे एक सिपाही राजा के पास आया और दीनतापूर्वक भोजन माँगने लगा। सिपाही भी कई दिन से भूखा रहने के कारण बहुत ही निर्बल हो गया था।

सिपाही की दशा देखकर राजा की आँखो मे आँसू आ गये और सोचने लगा कि स्वय मुझे ही कई दिन से भोजन नही मिला है और फिर यह सिपाही भी भोजन के लिए आ पहुँचा है। राजा विचार मे पड गया और सोचने लगा कि क्या करना चाहिए।

राजा को सिपाही पर इतनी दया आ गई कि उसने रानी से कहा— 'तुम्हारे पास जो कुछ भी हो इस सिपाही को दे दो।

रानी ने कहा— 'मेरे पास ही क्या रखा है जो मैं सिपाही को दे दू ?

राजा ने कहा— 'सिपाही भोजन का प्रबन्ध करने में लगे हैं सम्भव है वे अपने प्रयत्न में सफल हो जाएँ और हमें खाना मिल जाए, इसलिए जो भी कुछ हो उसे सिपाही को अवश्य ही दे दो।

रानी के पास केवल एक रोटी थी जो कि उसने रखी हुई थी। रानी ने वह रोटी आधी राजा के लिए और आधी अपने लिए रखी थी। राजा ने कहा कि— 'प्रभु के दरबार में कोई कमी नहीं है, वह अवश्य ही हमें भी देगा। मेरे हिस्से की आधी रोटी इसे दे दो।"

ईश्वर के प्रति राजा की अगाध श्रद्धा देखकर रानी ने प्रसन्नता पूर्वक अपने हिस्से की आधी रोटी भी सिपाही को दी।

कुछ समय पश्चात् राजा के सिपाही बहुत-सा भोजन लेकर आ पहुँचे और इस प्रकार राजा रानी तथा सभी सिपाहियों ने पेट-भर भोजन किया।

'जो संकट में भी अपने शुभ भाव रखते हैं, उनका काम अवश्य ही सफल होता है।

○○
○

३८

मातृ-भक्ति

आशुतोष मुखोपाध्याय हाईकोर्ट के न्यायाधीश तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर थे। माता-पिता के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा भक्ति थी उनकी विद्वत्ता को देखकर बहुत से साथी उनको विलायत जाने का भी आग्रह करते थे, परन्तु वे अपने माता-पिता को छोड़कर विलायत जाना पसन्द नहीं करते थे।

आशुतोष को इस बात का भी पूर्ण विश्वास था कि यदि व्यक्ति चाहे तो अपने देश में रहकर भी उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करके देश-सेवा कर सकता है। बस, यही कारण था कि वे कभी भी विलायत जाने का नाम तक नहीं लेते थे।

एक बार आशुतोष की विद्वत्ता से प्रसन्न होकर तत्कालीन गवर्नर जनरल ने उनको भेंट के लिए आमन्त्रित किया और उच्च शिक्षा के लिए विलायत जाने का परामर्श दिया। इस पर आशुतोष ने उत्तर दिया कि—"मेरी माता मेरा विलायत जाना पसद नहीं करती है, इसलिए मेरा वहां जाना असम्भव है।"

भारतवर्ष का सर्वोच्च प्रशासक—वायसराय आशुतोष को विलायत भेजने का आग्रह कर रहा है किन्तु वह अपनी माता को छोड़कर विदेश जाने के लिए असमर्थता प्रकट करता है। इस बात से सभी बड़े-बड़े अधिकारियों तक को भी आश्चर्य हुआ। क्योंकि जिस वायसराय की आज्ञा का बड़े से बड़े राजा-महाराजा भी उल्लंघन करने में हिचकिचाते हैं, उसी के सामने आशुतोष विलायत जाने के लिए मना कर रहा है।

आशुतोष की अनिच्छा के फलस्वरूप वायसराय ने जब अपना अपमान देखा तो कड़ी भाषा में उससे कहा—"जाओ अपनी माता से कह दो कि भारत का वायसराय मुझे विलायत जाने का हुक्म देता है।"

वायसराय का हुक्म सुनकर आशुतोष ने भी कड़ी भाषा का प्रयोग किया और कहा—"यदि ऐसा ही है तो मैं भारत के गवर्नर जनरल से निवेदन करना चाहूँगा कि आशुतोष अपनी माता की आज्ञा का उल्लंघन करके दूसरे किसी की भी आज्ञा का पालन नहीं करेगा। फिर आज्ञा देने वाला—चाहे वायसराय हो या उससे भी बड़ा कोई दूसरा अधिकारी।"

वायसराय आशुतोष के दृढ़ निश्चय से प्रभावित हो गया और उसने विलायत भेजने का आग्रह छोड़ दिया। आशुतोष की मातृ-भक्ति के दर्शन इस घटना के द्वारा स्पष्ट दिखलाई देते हैं कि वह माता के कितने अनन्य आज्ञाकारी सेवक थे।

३९

जगबन्धु की सहानुभूति

देशबन्धु चित्तरजनदास के दादा जगबन्धुदास बहुत ही परोपकारी एव सरल हृदय के व्यक्ति थे। वे दूसरे के कष्ट को तनिक भी नही देख सकते थे और कभी-कभी तो दूसरे का कष्ट स्वय सहन करने मे भी नही हिचकिचाते थे।

एक दिन की बात है कि जगबन्धु पालकी मे बैठकर जा रहे थे। उन दिनो बगाल मे सभी बडे-बडे व्यक्ति पालकी मे ही बैठकर चलते थे, इसीलिए जगबन्धु भी पालकी मे ही बैठकर इधर-उधर जाया करते थे। इसी प्रकार वे एक दिन जा रहे थे, तो मार्ग मे एक ब्राह्मण मिला, जो कि बहुत दूर से चलकर आ रहा था और धूप के कारण वह बहुत ही थका हुआ भी था। जगबन्धु उस थके हुए ब्राह्मण को देखकर स्वय पालकी से उतर पडे और उस ब्राह्मण को आदर पूर्वक पालकी मे बैठाया।

इसी घटना के पश्चात् जगबन्धु के मन में यह भी विचार करते देर न लगी कि इस प्रकार के थके हुए व्यक्तियों के विश्राम हेतु एक विश्रामगृह की आवश्यकता है। इस भाव से प्रेरित होकर उन्होंने एक धर्मशाला बनवाई, जिसमें थके हुए पथिक एवं भिन्न भिन्न व्यक्ति आश्रय पाते थे और विश्राम करते थे।

•••

दुखी मनुष्य जब स्नेह और सहानुभूति का स्पर्श पाता है, तब आंसुओं की झड़ी लग जाती है।

—प्रसाद

४०
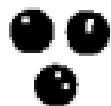
अहिसा और सेवा

प्रयाग मे त्रिवेणी के दूसरी ओर एक योगीराज रहते थे। एक शेर प्रतिदिन दिन मे या रात्रि मे योगीराज से मिलने के लिए आया करता था।

एक वार महात्मा मुन्शीराम योगीराज के दर्शन करने के लिये चले, और रात्रि के दस वजे उनके आश्रम मे पहुँचे। वहाँ उन्होने देखा कि एक वृद्ध कोपीनधारी महात्मा समाधि लगाये वैठे है।

रात्रि के तीन वज गये, परन्तु योगीराज ने अपनी समाधि नही खोली और मिलने के लिए आये हुए व्यक्तियो की ओर आँख उठाकर भी नही देखा।

कुछ समय पश्चात् सिह की गगन-भेदी गर्जना सुनाई पडी तो सभी दर्शनार्थी घवरा गये और सोचने लगे कि आज योगिराज के दर्शन तो हो या न हो, परन्तु शेर अव हमे छोडेगा नही।

देखते ही देखते वह वनराज अपनी लम्बी पूंछ हिलाता हुआ और अपनी तेज आँखें चमकाता हुआ आश्रम के निकट आ पहुँचा और सीधा योगीराज के सम्मुख पहुँच कर उनके चरण चाटने लगा।

योगीराज ने आँखें खोलीं और केसरी के मस्तक पर प्यार से हाथ फेरा और कहा— अच्छा बच्चा अब तू चला जा।'

गुरुदेव के वचन सुनते ही वह शेर नम्रतापूर्वक वापिस जंगल को चला गया।

महात्मा मुन्शीराम जो कि योगीराज के दर्शन करने आये थे यह दृश्य देखकर उनके चरणों में गिर पड़े और स्वाभाविक रूप से उनके मुख से ये शब्द निकल पड़े—"अहो महाराज! इतना चमत्कार?

महात्मा ने उत्तर दिया कि इसमें चमत्कार तो कुछ भी नहीं है। किन्तु बात इस प्रकार है कि एक बार किसी शिकारी ने इस शेर को गोली मार दी जिससे यह शेर जीवित तो रह गया परन्तु इसके पैर में बहुत ही भयंकर घाव हो गया जिसके कारण से यह चल-फिर भी नहीं सकता था और पड़ा-पड़ा चिल्लाता रहता था। एक दिन मैंने इसके पास पहुँच कर इसको पानी पिलाया और जंगल की जड़ी-बूटी पीसकर इसके जख्म पर बाँध दी। इस प्रकार मैं कई दिन तक दवाइयाँ बाँधता रहा जिसके उपचार से शेर का पैर ठीक हो गया। जब मैं इस शेर के पैर में दवाई बाँधता था तो यह मेरे पैर को चाटता रहता था और आराम होने के पश्चात् भी इसकी यह आदत नहीं छूटी है। इसीलिए यह शेर प्रतिदिन मेरी समाधि के समय पैर चाटने के लिए आता है।

योगिराज ने आगे कहा—"बस, इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि अहिंसा व्रत का पालन करने तथा सेवा करने का फल कभी निष्फल नहीं जाता। और यही कारण है कि अनेक पशुओं को खाने वाला यह शेर मेरा शिष्य बन गया है और इसको कभी भी मैंने मनुष्य का मास खाते नहीं देखा है।"

देखा आपने सेवा व अहिंसा का चमत्कार ?

४१

पति सुधारक पत्नि

मुन्शीराम नामक व्यक्ति प्रारम्भ से ही कुसंगति में पड़ गया था। उसको नशा करने की बहुत बुरी आदत पड़ गई थी और बिना नशे के वह एक दिन भी नहीं रह सकता था। इस प्रकार उसका जीवन पतन की ओर अग्रसर हो रहा था।

बहुत समय तक उसने घर-गृहस्थी के सामान को बेचकर ही अपनी सन्तुष्टि की और कुमार्ग पर चलता रहा परन्तु जब घर की सभी वस्तुएँ समाप्त होने को आईं तो उसे खाने के लिए चिन्ता हुई।

इसके पश्चात् उसने बिना पैसे होते हुए भी अपना वही काम चालू रखा और बराबर शराब आदि दुर्व्यसनों में लिप्त रहा। उसके ऊपर ऋण (कर्ज) का भार बढ़ गया जिसको चुकाने में वह असमर्थ था। नशाखोरी के दुर्व्यसन के कारण आमदनी का कोई साधन मुरु नहीं हो सका था।

एक दिन मुन्शीराम को एक दुकानदार का तीन-सौ रुपये की उधार का बिल मिला, जिसको कि उसे शीघ्र ही चुकाना आवश्यक था। इसी की चिन्ता मे वह दिन भर लगा रहा, परन्तु रुपए का प्रबन्ध न कर सका। शाम को जब वह रसोईघर मे भोजन के लिए पहुँचा, तो पत्नी ने प्रेम-पूर्वक उदासी का कारण पूछा। मुशीराम ने सब बातें पत्नि के सामने स्पष्ट बतला दी और वह कोई भी बात पत्नि से छिपा न सका।

पति को भोजन कराने के पश्चात् पत्नि ने उनके हाथ धुलाए और स्वय भोजन करने से पूर्व ही अपने हाथो मे से सोने के कडे उतार कर पतिदेव के हाथो मे प्रेमपूर्वक दे दिये और कहा—"जब तक कोई भी वस्तु मेरे पास ऋण चुकाने के लिए शेष है, तब तक मैं आपकी चिन्ता को दूर करने का भरसक प्रयत्न करती रहूँगी।" इस प्रकार कहते हुए पत्नि ने अपनी दूसरी धोती भी पति के सामने रख दी कि—'यह दूसरी धोती भी आप बेच सकते है, क्योकि मैं केवल एक ही धोती से काम चला सकती हूँ।"

पत्नि की सरलता, त्याग एव प्रेम को देख कर मुशीराम की आँखो मे आँसू आ गये और उसे यह समझने देर न लगी कि जिसके घर मे ऐसी देवी हो और उसका पति कुमार्ग पर चलते रहने के अतिरिक्त कुछ न करे, यह कैसे हो सकता है? उसने पत्नि की उस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और कडे बेचकर अपना सब ऋण चुका दिया। इसके पश्चात् शेष रुपयो मे उसने अपना एक कार्य चालू किया और निश्चय किया कि भविष्य मे कभी भी शराब नही पीऊँगा और न कोई ऐसा कार्य करूँगा, जिससे मेरा जीवन पतन के गर्त मे गिरे।

इस प्रकार की प्रतिज्ञा के पश्चात् वह निरन्तर अपने आजीविका कार्य में संलग्न रहने लगा और कुछ ही समय में उसने धन भी अर्जित कर लिया और अनेकों बुराइयों को त्यागकर अपना जीवन भी सुधार लिया।

'धन्य है ऐसे व्यक्ति जो संसार में ठोकर खाकर भी सँभलने का प्रयत्न करते हैं और अपना जीवन सफल बना जाते हैं।"

४२

समय पर कार्य

एक वार लोकमान्य तिलक तलेगा गांव मे एक कारखाना देखने के लिए गये, जो कि गांव वालो ने अपने चन्दे से वनाया था। इसी प्रकार के चन्दे आदि से वहाँ एक विद्यालय भी चल रहा था।

लोकमान्य तिलक कारखाना देखने के पश्चात् विद्यालय को देखने भी गये, तो वहाँ पर सुन्दर दृश्य ने उनको आकर्पित कर लिया। उन्होने वहाँ पर विद्यालय के प्रोफेसरो से भी वातचीत की। वातचीत का विपय था—"राष्ट्रीय शिक्षा"। विपय रुचि-पूर्ण होने के कारण से लोकमान्य तिलक वातचीत मे इतने तल्लीन हो गये कि गाडी का समय भी उनको याद न रहा।

जब उन्होंने वातचीत के मध्य ही अचानक समय देखा तो गाडी आने का समय होने ही वाला था, अव वे प्रोफेसरो से चलने के लिए कहने लगे, तो प्रोफेसरो को प्रसग बीच मे छोडना अच्छा

न था। क्योंकि वे स्वयं उस विषय में तल्लीन थे। जब प्रोफेसरों ने उनसे थोड़ी देर ठहरने की प्रार्थना की तो उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया। प्रोफेसरों ने यहाँ तक भी कहा कि— 'आप जब तक बातचीत करेंगे तब तक गाड़ी नहीं आयेगी और यदि आपको विश्वास न हो तो परीक्षा करके देख लीजिये।

लोकमान्य तिलक ने एक भी बात न सुनी और कहा— 'प्रति दिन का जो कर्तव्य है वह छोड़ना पसंद नहीं करता हूँ। गाड़ी समय पर आवे या देर से इससे कोई प्रयोजन नहीं है"

यह कहकर वे वहाँ से चल ही दिये और ठीक समय पर स्टेशन पर पहुँच गये। वहाँ उपस्थित सभी व्यक्तियों पर उनके समय पालन के कार्य से बहुत प्रभाव पड़ा।

०००

४३

सत्य भी ऐसा ही हो !

देशभक्त गोपालकृष्ण गोखले बाल्यावस्था से ही स्कूल मे पढने के लिए जाया करते थे। यद्यपि पढने मे वे अधिक प्रतिभाशाली प्रतीत नही होते थे, परन्तु जो भी घर पर कार्य उनको दिया जाता था, अपने ज्ञान के आधार पर उस कार्य को पूर्ण करने की सर्वदा चेष्टा किया करते थे।

एक दिन अध्यापक ने कुछ प्रश्न घर पर करने के लिए दिये। गोखले ने अन्य सब प्रश्न तो कर लिए, परन्तु एक प्रश्न का उत्तर वे न लिख सके। उन्होने एक प्रश्न का उत्तर अपने मित्र से पूछकर लिख लिया।

दूसरे दिन जब अध्यापक ने कक्षा मे प्रश्नो के उत्तर देखे तो गोखले के सब प्रश्न ठीक निकले। अन्य किसी भी विद्यार्थी के सभी प्रश्न ठीक नही निकले।

अध्यापक गोखले के प्रश्नोत्तरों को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उनको पुरस्कार देने लगे परन्तु गोखले ने पुरस्कार स्वीकार नहीं किया और उनकी आँखों में आँसू आ गये। आँखों में आँसुओं को देखकर शिक्षक को आश्चर्य हुआ और उन्होंने इसका कारण पूछा।

गोखले ने नम्रता पूर्वक कहा—"सभी प्रश्नों के उत्तर मैंने स्वयं नहीं लिखे हैं बल्कि एक मित्र से एक प्रश्न का उत्तर लिखने में सहायता ली है इसलिए पुरस्कार का अधिकारी मैं नहीं हूँ।

गुरुजी गोखले की सत्य-प्रियता से बहुत ही प्रसन्न हुए और इतने प्रभावित हुए कि वह इनाम गोखले को ही दे दिया।

४४

गरीब की प्रामाणिकता

एक यात्री स्कॉटलैण्ड की यात्रा करता हुआ एडिनवरो नामक नगर मे गया और वहां पर वह एक धर्मशाला मे विश्राम के लिये ठहर गया।

कुछ समय पश्चात् एक गरीब लडका भीख मांगने के लिए आया और उसने यात्री से भीख मांगी। यात्री ने रेजगारी न होने का वहाना करते हुए मना कर दिया। लडका नम्रता-पूर्वक वोला—"रेजगारी मैं ला दूंगा।"

यात्री ने भी सोचा कि अव तो यह पीछे पड गया है, इसे कुछ-न-कुछ देना ही पडेगा, इसलिये कुछ न कुछ देकर इसको यहां से भगाया जाए तो अच्छा है, नही तो यह विश्राम भी नही करने देगा। ऐसा विचार कर उसने उस वच्चे को एक शिलिंग दे दिया। वालक ने सोचा कि यह शिलिंग मुझे दान मे न देकर, केवल रेजगारी कराने के लिए दिया है, इसलिए वह दौडता हुआ रेजगारी कराने के लिए गया। लडके को रेजगारी कराने मे देर

हो गई और जब वह बालक दौड़ता हुआ धर्मशाला में आया तो यात्री वहाँ से जा चुका था।

बालक ने समझा कि यात्री देर लगने के कारण से चला गया है इसलिए वह शाम तक यात्री की प्रतीक्षा में बैठा रहा। शाम तक लम्बी प्रतीक्षा करने पर भी जब यात्री वापिस नहीं आया तो लड़का रात-भर वहीं पर बैठा रहा और इस प्रकार वह तीन दिन तक उस व्यक्ति की प्रतीक्षा करता रहा।

तीसरे दिन शाम के समय वह यात्री दुबारा उसी धर्मशाला में ठहरने के लिए आया तो वह लड़का देखते ही उसके पास पहुँचा और कहा— 'साहब! यह लीजिये आपकी रेजगारी ले आया हूँ। इस प्रकार कहते हुए उसने शिलिंग की रेजगारी यात्री को दे दी।

यात्री बोला—"यह शिलिंग मैंने रेजगारी के लिए न देकर तुमको दिया था फिर मुझे रेजगारी वापिस क्यों देते हो? यह सब पैसे तुम्हारे ही है। इस प्रकार कहते हुए यात्री ने वह सब रेजगारी उस लड़के को दे दी।

बालक की सरलता एवं प्रामाणिकता से वह सद्गृहस्थ बहुत ही प्रसन्न एवं प्रभावित हुआ और उसने उस बच्चे को स्कूल में पढ़ने के लिए बैठा दिया। साथ ही साथ उसकी शिक्षा का सम्पूर्ण व्यय-भार अपने ऊपर ले लिया।

०
०

४५

धर्मगुरु की सभ्यता

जब क्लीमेन्ट नामक व्यक्ति को पोप की महान् पदवी मिली तो देश-विदेश के अनेक प्रतिनिधि व राजा-महाराजा उस समारोह मे एकत्रित हुए।

जब प्रत्येक व्यक्ति ने परम्परानुसार झुककर आदरभाव पूर्वक पोप का अभिवादन किया तो पोप ने भी हाथ जोडकर अभिवादन का उत्तर दिया। यह देखकर कुछ व्यक्तियो ने पोप से कहा कि—"आपको अभिवादन का उत्तर हाथ जोडकर नही देना चाहिए।"

पोप ने कहा—"मुझे गद्दी पर बैठे हुए अधिक समय नही हुआ है, इसलिए मैं पुराने रीति-रिवाजो को भूला नही हूँ।"

अपने को आदर-पूर्वक नमस्कार करने वाला व्यक्ति चाहे जितना भी छोटा क्यो न हो, उसके अभिवादन के उत्तर मे

नमस्कार करना अच्छे रीति-रिवाजों एवं सभ्यता का सूचक है और यदि हम प्रत्युत्तर में नमस्कार न करें, तो स्वाभिमानी होने के दोषी हैं। इसलिए आजकल प्रत्येक व्यक्ति – चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो अपने को नमस्कार करने वाले को स्वयं भी नमस्कार करता है और इस प्रकार के व्यवहार से उच्च विचारों एवं सभ्यता का पता चलता है।

सभ्यता एकांतिक वस्तु नहीं है। उसका अर्थ हर एक जगह एक ही नहीं होता। पश्चिम की सभ्यता पूर्व की सभ्यता हो सकती है।

—महात्मा गांधी

४६

वादशाह की दयालुता

नौशेरवान एक वादशाह हुआ है, जिसने अपने लिए एक गाँव मे महल वनवाया था। महल के निकट ही एक गरीव वुढिया की झोपडी भी थी।

जव वुढिया अपना भोजन वनाती तो उस समय धुआँ वादशाह की वैठक मे पहुँचता था। वैठक का कमरा वहुत ही सुन्दर एव सुसज्जित था और रग-विरगे चित्र भी दीवारो पर चित्रित थे। कुछ समय पश्चात् जव वुढिया की रसोई के धुएँ से दीवारें काली पडने लगी, तो वादशाह के मन्त्रियो आदि ने वुढिया को वहुत समझाया कि वह अपनी झोपडी को वहाँ से हटा दे, परन्तु वुढिया वहाँ से झोपडी हटाने को तैयार नही हुई। यहाँ तक कि उसे धन का भी लोभ दिया गया, परन्तु वह इसके लिए भी तैयार नही हुई।

एक दिन वादशाह को भी इस सम्वन्ध मे पता लगा, तो उसने मन्त्रियो व अधिकारियो से यही कहकर टाल दिया कि

जाने दो बुढ़िया है और बहुत दीन-दुखी है, इसलिए बेचारी को यहीं पर बनी रहने दो।

एक दिन बादशाह अपने उसी कमरे में बैठे हुए थे तो वहाँ पर एक दूत उनसे मिलने के लिए पहुँचा। बादशाह ने प्रसंगवश दीवारों को देखा और देखकर हँसने लगे और कहने लगे—

"बुढ़िया की झोपड़ी से जो धुआँ निकलता है, उसने मेरे कमरे को कितना सुन्दर बना दिया है। इस प्रकार वे बुढ़िया की प्रशंसा करने लगे।

बादशाह की बात सुनकर दूत को बहुत आश्चर्य हुआ और उसने इसका कारण पूछा तो बादशाह ने उत्तर दिया—

"बुढ़िया की झोपड़ी से निकलने वाले धुएँ की कालिख (स्याही) से मेरी प्रशंसा लिखी जा रही है जो भविष्य में सदा ही उपस्थित रहेगी। जो भी इस कमरे की दीवारों के सम्बन्ध में पूछेगा और उसको मालूम पड़ेगा कि बुढ़िया की रसोई के धुएँ से यह कमरा काला हो गया है परन्तु बादशाह ने बुढ़िया की झोपड़ी नहीं हटवाई। इस प्रकार यह प्रसंग सदा के लिए एक कहानी बन जाएगा।

मनुष्यता का उच्च आदर्श यही है कि दूसरों के सुखी जीवन से सुख-शान्ति का अनुभव करना चाहिए। इसके विपरीत अपनी सुख-सुविधाओं के लिए दूसरों के सुख-साधनों को नष्ट करना—अधमता का अगुआ परिचायक है।

○○
○

४७ |

मकड़ी से भी सीखो

एक वार राजा ब्रूस को सग्राम मे पराजय का मुँह देखना पडा। राजा को अपनी इस पराजय से अपूर्व कष्ट हुआ और वह निरन्तर चिन्ता मे डूबा रहने लगा। उसके मन मे दृढ विश्वास हो गया था कि अव वह कभी भी सफलता प्राप्त न कर सकेगा और निरन्तर चिन्ता मग्न रहते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देगा।

एक दिन राजा इसी चिन्ता मे वैठा हुआ था। उसने वैठे-वैठे एक मकडी को देखा जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना चाहती थी, परन्तु उसे सफलता नही मिल रही थी, अर्थात् सफलता प्राप्ति मे किसी उपयुक्त साधन की कमी थी।

अपने प्रयत्नो मे कई वार असफल होने पर भी मकडी ने साहस नही छोडा और सफलता की आशा को कायम रखते हुए मकडी ने अव की वार एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के लिये

जाला (जाल) बनाया और उसके सहारे उस स्थान पर जाने में सफल हो गई।

राजा यह सब-कुछ देख रहा था और मकड़ी के प्रयत्न एवं लगन से उसका उत्साह बढ़ गया। उसी दिन से उसने अपने कार्य की सिद्धि के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। मकड़ी के कार्य एवं लगन को देखकर उसकी निराशा दूर हो गई और उसके मन-मंदिर में नई उमंग एवं नई आशा का संचार फिर से जाग्रत हुआ।

राजा ने उसी दिन से अपना सैन्य-बल बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया और जब पूर्ण सशक्त हो गया तो अपने प्रतिद्वन्द्वी पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया। इस प्रकार उसने मकड़ी के प्रयत्न से शिक्षा लेकर अपने कार्य में अपूर्व सफलता प्राप्त की।

४८

स्वामि-भक्ति का उच्च आदर्श

एक बार पृथ्वीराज चौहान मोहबा के युद्ध मे घायल हो गये और घायल अवस्था मे ही रणक्षेत्र मे पडे रहे। घायल होने से पूव उन्होंने अनेक वीरो को मौत के घाट उतार दिया था और चन्देलो की शक्ति को धूल मे मिला दिया था।

पृथ्वीराज जब घायल अवस्था मे पड हुए थे, तो उस समय गिद्ध और कौए उनके शरीर का मांस भक्षण करने के लिये एकत्र होने लगे। इस प्रकार का दृश्य देखकर पास मे पडे एक सैनिक से न रहा गया, वह भी घायल अवस्था मे ही पडा हुआ था। उसने महाराज को बचाने के लिये अपना मांस काट-काट कर कौओ और गिद्धो के सामने डालना प्रारम्भ कर दिया, क्योकि इसके अतिरिक्त महाराज को बचाने का अन्य कोई भी उपाय उसके पास न था।

सैनिक के इस कार्य को देख कर गिद्ध व कौए राजा को छोडकर उसके निकट एकत्रित होने लगे और पृथ्वीराज के प्राणो की रक्षा हो गई।

कुछ समय पश्चात् पृथ्वीराज चेतन अवस्था में हुए और कुछ ही समय पश्चात् अन्य सरदार लोग भी उनको ढूंढते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने स्वामि भक्ति का वह दृश्य भी अपनी आँखों से देखा।

पृथ्वीराज को उठाकर वे शीघ्र ही उस सैनिक के पास भी पहुँचे जो कि अपने माँस को काट-काट कर गिद्धों-कौओं को डाल रहा था और स्वामी के प्राणों की रक्षा कर रहा था।

जैसे ही वे सब उस वीर सैनिक के पास पहुँचे तो वह अपनी अन्तिम साँस ले रहा था और बिना कुछ बोले ही वह आँखों से दो बूँद निकाल कर सदा के लिये इस संसार से विदा हो गया।

सैनिक की स्वामि भक्ति एवं दयालुता को देखकर सभी व्यक्ति आश्चर्य करने लगे और उसके इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

वह स्वामि-भक्त एवं वीर सैनिक सदा के लिए संसार से विदा हो गया परन्तु जनता उसको युग-युगान्तर तक स्मरण करके अपने स्वच्छ हृदय की पुष्प-श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती रहेगी।

४९

शिवाजी और सैनिक

छत्रपति शिवाजी अपने सैनिको के साथ वहुत ही प्रेम-पूर्वक व्यवहार करते थे और जो भी सुख-सुविधा उनके लिये सम्भव हो सकती थी, उसे करने मे कभी भी पीछे नही हटते थे।

एक वार औरंगजेव की विशाल सेना ने छत्रपति शिवाजी को किले मे घेर लिया। किले के चारो ओर मुगल सेना पहरा दे रही थी, परन्तु फिर भी शिवाजी किले से निकलने मे सफल हो गये।

जव मुगल सेना को इस रहस्य का पता लगा तो उसने शिवाजी का पीछा किया। शिवाजी मैदान मे लडने वाला वहादुर व्यक्ति था, इसलिए वह मुगलो के सेना से टक्कर लेने के लिये तैयार हो गया। परन्तु उनके एक सैनिक ने जव शत्रु की विशाल सेना को देखा, तो शिवाजी को अपने स्थान पर शीघ्र चले जाने

की प्रार्थना की और कुछ सिपाहियों को भी उनकी रक्षा के लिये साथ मे भेज दिया। सिपाही ने कहा कि आप सुरक्षित स्थान पर पहुँचकर तोप द्वारा संकेत कर दें और मैं तब तक इन सभी शत्रुओं को यहीं पर रोक रखूँगा।

जब तक शिवाजी किले में नहीं पहुँच गये तब तक उस वीर सैनिक ने अकेले ही मुगलों की विशाल सेना को रोके रखा और अनेकों को मौत के घाट उतार दिया। उसी समय उसकी सहायता के लिए अन्य सैनिक भी आ पहुँचे और सबने मिलकर शत्रु की सेना से खूब लोहा लिया।

उस वीर सैनिक ने अपना जीवन संकट में डालकर भी अपने स्वामी की रक्षा की और अकेला ही विशाल सेना से जूझता हुआ वीर गति को प्राप्त हो गया।

वीर पुरुष अपने जीवन के भरोसे युद्ध करता है, सैनिकों की संख्या के बल पर नहीं।

—वेद व्यास

५०

ईश-वन्दना का चमत्कार

एक बार मुगल सम्राट औरगजेव को अपने राज्य की रक्षा के लिये युद्ध करना पडा। शत्रु प्रवल था, इसलिए शत्रु से कडा मुकावला हुआ। कुछ समय के लिये दोनो सेनाएँ शान्त हो गई, परन्तु दोनो पक्षो के सेनाध्यक्ष अपने-अपने मोर्चे को दृढ करने की चिन्ता मे थे।

कुछ समय पश्चात् दोनो ओर की सेनाएँ फिर युद्ध के मैदान मे डट जाने को तैयार हो गई। शत्रु भी अपनी पूरी तैयारी के साथ औरगजेव के साथ जूझना चाहता था।

जिस समय शत्रु का आक्रमण होने वाला था, उस समय शाम का समय था और नमाज का समय विल्कुल निकट था, अत औरगजेव को एकाएक नमाज के समय की स्मृति हो आई और वह उसी क्षण घोडे से नीचे उतर गया।

औरगजेव को घोडे से नीचे उतरा हुआ देखकर उसके सैनिको को वहुत आश्चर्य हुआ। जव सैनिको ने औरगजेव से इसका

कारण पूछा तो उसने नमाज पढ़ने की इच्छा प्रकट की। सैनिकों ने उसे ऐसा करने के लिये बहुत मना किया परन्तु उन सबके आग्रह की उपेक्षा करते हुए उसने निश्चित समय पर नमाज पढ़ी।

शत्रु की सेना अति निकट थी इसलिए वह यह सब कुछ देख रही थी। शत्रु की सेना पर औरंगजेब के इस काम का बहुत प्रभाव पड़ा और शत्रु के सैनिक औरंगजेब के इस कार्य की प्रशंसा करने लगे।

जब अब्दुल मजीद को जो कि औरंगजेब का शत्रु था पता लगा तो वह सहसा बोल उठा—"ऐसे धर्म-प्रेमी से लड़ाई करना उचित नहीं है।" उसने उसी समय युद्ध बन्द करने की आज्ञा दे दी।

दोनो सेनाऐं युद्ध-क्षेत्र से पीछे हट गई और अपने-अपने शिविरों पर वापिस चली गई।

औरंगजेब के इस कार्य से अनेकों योद्धाओं का जीवन बच गया और बहुत बड़ी क्षति होने से रह गई। उसने संकट-काल में भी खुदा की बन्दगी को नहीं भुलाया और अपने इस कर्म से वह अपूर्व सफलता प्राप्त करने में सफल हो गया।

५१
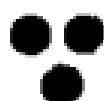
अपराध एक : दण्ड अनेक

एक बार राजा विक्रमादित्य के राज्य मे चार व्यक्तियो ने एक ही प्रकार का अपराध किया। राजा ने चारो व्यक्तियो को पकड कर बुलवाया और चारो के बयान सुने। बयान सुनने के पश्चात् राजा को पूर्ण विश्वास हो गया कि चारो अपराधियो ने एक जैसा ही अपराध किया है, परन्तु फिर भी उनको भिन्न-भिन्न प्रकार से दण्ड दिया।

प्रथम अपराधी को राजा ने अपने पास एकान्त मे बुलाया और कहा—"जाओ, फिर कभी ऐसा मत करना।"

दूसरे अपराधी को बुला कर राजा ने कहा—"अधम, मेरे राज्य मे रहकर ऐसा निकृष्ट कार्य करते हो !"

तीसरे अपराधी को भी राजा ने बहुत बुरा-भला कहा और तीन-चार जूते मारकर महल से बाहर निकलवा दिया।

चौथे अपराधी को बुलवा कर राजा ने उसका काला मुंह करा दिया और गधे पर बैठाकर नगर के चारों ओर चक्कर लगाने की आज्ञा दी।

राजा ने एक जैसे अपराध के लिये चारों अपराधियों को अलग-अलग प्रकार का दण्ड दिया। यह बात समस्त राज्य में शीघ्र ही फैल गई और जनता में चर्चा का विषय बन गई। यहाँ तक कि राज्य के कर्मचारियों को भी इस प्रकार के न्याय से बहुत ही आश्चर्य हुआ। वे अपने मन में सोचने लगे कि यह कैसा इन्साफ ?

जब इस शंका का समाधान नहीं हुआ तो राज्य-कर्मचारियों ने इस प्रश्न को राजा से ही पूछा।

राजा ने कहा—"तुम लोग यदि न्याय की प्रक्रिया को उचित नहीं समझते हो तो परीक्षा करके देख लो। प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या ? यदि आप लोग इसी समय अपराधियों के पास जाएँ, तो दण्ड की सही स्थिति आपके सामने आ जाएगी और आप सबकी शंका का समुचित समाधान भी हो जाएगा।"

राज्य के कुछ कर्मचारी राजा की बात सुनकर अपराधियों की खोज में निकले। प्रयत्न करने पर वे अपराधियों की सही स्थिति से पूर्णतया परिचित हो गए।

जिस अपराधी को राजा ने यह कहा था कि— 'भविष्य में ऐसा काम कभी मत करना।' —वह आत्म ग्लानि के कारण विष खाकर मर गया।

जिस अपराधी को राजा ने बुरा भला कहकर छोड़ दिया था वह नगर छोड़कर अन्यत्र चला गया और जिस अपराधी को

राजा ने बुरा-भला भी कहा था और जूते भी लगवाए थे, वह लज्जावश कही छुपकर रहने लगा।

चौथा अपराधी जिसका काला मुँह करके, गधे पर चढाकर नगर का चक्कर लगाने को कहा था, वह अपने मकान के सामने पहुँचते ही पत्नि को सामने खडी देख कर लज्जा के मारे बेहोश होकर गधे से नीचे गिर पडा।

इस प्रकार चारो अपराधियो की जाँच-पडताल करने के पश्चात् राज्य-कर्मचारियो को राजा के न्याय से बहुत ही सतोष हुआ और वे मुक्त कठ से राजा की न्याय-प्रियता की प्रशसा करने लगे।

५२

हृदय को प्रेरणा

भारत की पवित्र भूमि पर अनेक ऐसी विभूतियों ने जन्म लिया है, जिनके अन्तस्तल में अहिंसा के प्रति अटूट श्रद्धा रही और उन्होंने जीवन भर अहिंसा व्रत का उपदेश ही नहीं दिया बल्कि उसका जीवन में प्रयोग भी किया है—अर्थात् कार्य रूप में प्रयोग किया है।

विदेशों की अपेक्षा भारत में बालक, युवक व वृद्ध—सब ने प्राणिमात्र को कष्ट देने का विरोध किया है। विदेशों में तो मन-दूर तक म प्राणियों को कष्ट देने में आनन्द का अनुभव करते हैं

थियोडोर पार्कर जब बालक ही था तो एक दिन नगर से बाहर घूमने के लिये निकला। नगर से बाहर उसने एक कछुए को पेट के बल खिसकते हुए देखा। उसने कछुए को मारने के लिये एक पत्थर उठाया और कछुए के ऊपर पत्थर फेंकने ही वाला था कि उसी समय उसके मन में एक विचार आया और वह उसी

स्थिति मे खडा रह गया। उसके मन मे यह विचार आया कि यह छोटा जानवर पहिले ही दु ख पा रहा है, इसलिए इसे पत्थर मार-कर और अधिक दु ख नही देना चाहिए। इसी विचार को लेकर उसने पत्थर फेंकना स्थगित कर दिया और पत्थर वही पर डाल-कर सीधा घर चल दिया।

उस बालक ने घर पहुँचकर सबसे पहले अपनी माँ से जो प्रश्न पूछा वह निम्न प्रकार है —

"माँ, आज मैंने कछुए को मारने के लिये पत्थर हाथ मे उठाया, परन्तु उसी क्षण मेरे मन मे यह विचार आया कि इस बेचारे कछुए को नही मारना चाहिए क्योकि यह तो पहले से ही कष्ट सहन कर रहा है। मन मे ऐसा विचार पैदा होने के पश्चात् मैंने पत्थर मारना स्थगित कर दिया और वह पत्थर एक ओर डाल दिया। अब मुझे आप यह बतला दीजिये कि वह पत्थर मेरे हाथ से किसने डलवा दिया ?"

माँ ने कहा—"बेटा, अन्त करण द्वारा प्रभु की प्रेरणा मनुष्य को अच्छाई या बुराई के रूप मे स्वय उस समय प्रतीत हो जाती है, जब कि वह किसी कार्य को करने के लिये प्रस्तुत होता है। इस प्रकार अनेक व्यक्ति कुमार्ग से सुमार्ग की ओर चलने के लिये प्रेरित होते है और अत मे उनको सुख की प्राप्ति होती है।"

थियोडर के मन मे माता की बात का गहरा प्रभाव हुआ और उस दिन से वह सत्य मार्ग पर चलने का प्रयत्न करने लगा और इस प्रकार उसने अपने जीवन को सुमार्ग पर लगाकर सफ-लता प्राप्त की।

५३

प्रगति भी ऐसी हो

संयुक्तराज्य अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति विल्सन बहुत ही गरीबी में पले थे। उन्होंने स्वयं लिखा है कि उनका जीवन बहुत ही निर्धनता में व्यतीत हुआ था। यहाँ तक कि कभी-कभी उनको बिना भोजन ही कई-कई दिन तक भूखा रहना पड़ता था।

निर्धनता के कारण, वे काम की खोज में केवल १ वर्ष की छोटी आयु में ही घर से निकल पड़े थे। कई वर्ष तक उन्होंने इधर-उधर मजदूरी की और प्रत्येक वर्ष एक-एक महीना शिक्षा भी ग्रहण करते रहे।

११ वर्ष के कठिन परिश्रम के पश्चात् उन्हें दो बैलों की जोड़ी व ६ बकरे प्राप्त हुए। ये उनको ८४ डालर बचाने के बदले में मिले। यह बचत उन्होंने कड़ी मेहनत करके व एक-एक पाई बचाकर रखने से ही की थी। २१ वर्ष की अवस्था तक उन्होंने बहुत ही कठोर परिश्रम किया।

जगल मे वे लकडी चीरने का काम भी करते थे और इसकी मजदूरी उनको एक महीने मे ६ डालर मिलती थी। सुवह उठते ही उनको काम प्रारम्भ करना पडता और शाम तक लगातार कार्य करना पडता था।

उन्होने अपनी उन्नति के मार्ग पर बढे चलने का पक्का निश्चय कर रखा था। अवकाश के समय का वे सदा ही सदुपयोग करते थे। वे 'समय' को 'सोने की मुहर' से भी मूल्यवान् समझते थे और ऐसा मन मे विचार धारण करके ही अपने कार्य मे सलग्न रहते थे।

उन्होने कुछ दिन तक खेती का काम भी किया। इसके पश्चात् वे एक दूर के गाँव मे चमडे का कार्य सीखने के लिये चले गये।

उनको भाषण देना आता था, इसलिए वे जहाँ भी कार्य करते, वहाँ पर शीघ्र ही लोकप्रिय हो जाते थे। अपनी इस योग्यता के कारण वे क्लब के सभापति चुने गये। इसके पश्चात् अनेक क्षेत्रो मे कार्य किया और सफलता एव लोकप्रियता प्राप्त की। अमरीका की कांग्रेस के सदस्य रूप मे उन्होने समाज की अच्छी सेवा की और वे इतने लोकप्रिय सिद्ध हुए कि जनता ने उनको अपना प्रेसीडेन्ट चुन लिया और इस प्रकार वे एक निम्न श्रेणी के मजदूर का जीवन व्यतीत करते हुए सर्वोच्च पद पर पहुँच गये।

५४

अकबर का साहस

एक बार जयपुर नरेश मुगल सम्राट अकबर से मिलने के लिये गए। जब वे महलों के निकट पहुँचे तो देखा कि वहाँ भगदड़ मची हुई है और जनता भयभीत होकर इधर-उधर भाग रही है।

जयपुर नरेश को यह सब कुछ देखकर बहुत ही आश्चर्य हुआ उन्होंने आगे बढ़कर देखा तो एक सुन्दर युवक हाथी के ऊपर बैठकर उसे अंकुश द्वारा नियंत्रण में करने की चेष्टा कर रहा है।

जयपुर नरेश को बहुत आश्चर्य हुआ कि पागल हाथी के डर से जब जनता इधर-उधर भाग रही है और हाथी नियंत्रण से बाहर होता जा रहा है तब भी वह युवक उस अपने अधिकार में करने का भरसक प्रयत्न कर रहा है और अपने जीवन को संकट में डालकर प्रजा की रक्षा कर रहा है।

अत मे हाथी थक गया और विवश होकर गिर पडा तो वहाँ पर अनेको व्यक्ति एकत्रित हो गये।

जयपुर नरेश भी युवक को देखने के लिये आगे बढे, तो उन्हे मालूम पड गया कि युवक अन्य कोई नही है, अकबर बादशाह ही है।

नरेश ने जब अकबर से इस सम्बन्ध मे पूछा कि सेना के होते हुए भी आप इस भयकर सकट मे कैसे पड गये, तो अकबर ने कहा कि जब अच्छे-अच्छे महावत व सेनापति भी हाथी को वश मे नही कर सके तो, यह कार्य मुझे ही अपने हाथ मे लेना पडा।

जयपुर नरेश समझ गये कि जिस बादशाह मे इतना साहस है तो फिर ऐसे व्यक्ति के लिये भारतवर्ष जैसे बडे देश पर मुगल साम्राज्य स्थापित करना क्या कठिन बात है।

निस्सन्देह यह अकबर के दृढ सकल्प, साहस और बहादुरी का ही परिणाम था कि अनेक राजाओ को परास्त किया और भारतवर्ष मे मुगल साम्राज्य की नीव दृढ करने मे सफल हुआ।

५५

पद का दायित्व

एक बार फ्रांस में भयंकर राज्य-क्रान्ति हुई, तो एक सेनापति अपने सैनिकों को साथ लेकर जा रहा था। सेनापति घोड़े पर सवार था और उसके आगे सेना के सिपाही पैदल चल रहे थे।

सैनिकों को पैदल चलते-चलते जब बहुत समय हो गया तो एक सैनिक को क्रोध आ गया और वह अपने साथियों से कहने लगा— देखो इस सेनापति को कितना आनन्द है कि निश्चिन्त घोड़े पर सवार होकर आ रहा है और हम सब लोग पैदल ही घिसट रहे हैं। यद्यपि सैनिक ने यह बात अपने साथियों से ही कही थी परन्तु वह सेनापति के कानों में भी पड़ गई।

इस बात के सुनते ही सेनापति घोड़े से नीचे उतर गया और सिपाही से बोला—"तुम थक गये हो इसलिए अब तुम इस घोड़े

पर बैठो और मैं अन्य सैनिको के साथ पैदल चलूँगा। परन्तु इसके साथ एक बात यह भी है कि लडाई के मोर्चे पर भी तुम्हे घोडे पर ही बैठा रहना होगा और समस्त सैनिको का मार्ग-दर्शन करना होगा।"

सेनापति की इस बात को सुनकर सिपाही पहले सकोच की अवस्था मे हो गया और उसकी हिम्मत घोडे पर बैठने की नही हुई, परन्तु सेनापति के कहने पर वह घोडे पर चढ गया और सेना के आगे-आगे चलने लगा।

कुछ दूर आगे चलने के पश्चात् शत्रु ने एक ओर मोर्चा लगाकर गोली चलाना प्रारम्भ कर दिया। जब तक वह शत्रु का सामना करने के लिए स्वय तैयार हो और अपने साथी सैनिको को तैयार करे, उससे पहले ही शत्रु-पक्ष की ओर से उसके सर मे एक गोली आकर लगी और वह घोडे से नीचे गिर पडा।

सेनापति जो कि उस सवार के ठीक पीछे पैदल चल रहा था, उसने उस सिपाही को उठाया और समझाया कि ऊँचे पद मे जितना आराम है, उतना ही बडा जिम्मेदारी का भार भी है और अनेको कठिनाइयाँ भी हैं, जिनका साहस के साथ सामना करना पडता है।

जिस सिपाही ने सेनापति बनने का कुछ ही देर आनन्द लिया था, उसे स्पष्ट एव प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात हो गया कि बडे पद पर बैठकर कितनी जिम्मेदारी बढ जाती है। उसे अपनी भूल भी समझने मे देर न लगी कि किस कारण से वह इतना जल्दी शत्रु का शिकार हो गया।

सेनापति ने तुरन्त अपना पद संभाल लिया और सैनिकों को ठीक दिशा में मोर्चे संभालने की आज्ञा दी। इस प्रकार कुशल सेनापति शत्रु से टक्कर लेता हुआ आगे बढ़ा और उसने स्वयं की भी रक्षा की और सैनिकों का सही मार्ग-दर्शन करके उनकी भी रक्षा करता हुआ अन्त में विजय को प्राप्त हुआ।

कहावत भी प्रसिद्ध है—

जिसका काम उसी को साजे।
और करे तो डंडा बाजे॥

व्यवस्था

५६

पिता का वलिदान

विम्वसार नामक राजा प्राचीन काल मे प्रचलित पशु-वलि से वहुत ही प्रभावित था। वह प्रतिवर्ष देवी को प्रसन्न करने के लिये पशु-वलि करता था और इस कार्य से अपने को वहुत धन्य समझता था।

एक वार विम्वसार ने देवी के सम्पर्ण के लिए पचास वकरो की वलि देने का निश्चय किया और वे मूक पशु वलि के लिये मँगवा लिये गये। वलि देने के स्थान पर निश्चित समयानुसार अनेको व्यक्ति भी एकत्रित हो गये।

वुद्धदेव को भी इस वलि के सम्वन्ध मे पता लगा, तो वे भी वहाँ पर पहुँच गये। जव वलिदान का समय आया और वकरो को एक निश्चित स्थान पर ले जाया गया, तो दया की मूर्ति वुद्धदेव उस भयानक दृश्य को देख न सके और उन्होने उन निर्दोष और मूक पशुओ को वचाने का सकल्प किया।

गीक 8 बुद्धदेव पशुओं तथा उनके मालिकों के साथ महलों म गये तो देखा कि वहाँ पर अनेक पुरोहित एकत्रित थे जो कि इस बलि को सम्पन्न कराने हेतु ही वहाँ आये थे। उनकी प्रेरणा से राजा न बहुत बड़ा यज्ञ किया और बलि देने का निश्चय किया था। पुरोहितों का कहना था कि इसके फलस्वरूप पूर्वजों को स्वर्ग का सुख मिलेगा और इस लोक म राजा की कीर्ति बढ़ेगी।

बुद्धदेव स न रहा गया और उन्होंने पुरोहितों से पूछा—"महाराज इन निर्दोष और मूक पशुओं का वध क्यों किया जा रहा है ?"

पुरोहित न उत्तर दिया—"मूर्ख इस बलिदान स तीन को एक साथ लाभ मिलता है। प्रथम—इस यज्ञ के करने वाले राजा बिम्बसार पुण्य के भागी होंगे दूसरे मेरे द्वारा यह यज्ञ सम्पन्न हो रहा है, इसलिए मुझे भी इसका पूरा लाभ मिलेगा और तीसरे—जिन पशुओं का इस शुभ अवसर पर बलिदान होगा उनको भी स्वर्ग में स्थान मिलेगा।"

बुद्धदेव बोले—"अच्छा तो इससे यह समझना चाहिए कि इस अवसर जिसकी भी प्राण बलि-वेदी पर चढ़ाओगे वह सीधा स्वर्ग में ही जाएगा ?"

पुरोहित ने कहा—"हाँ वह अवश्य स्वर्ग प्राप्त करेगा।

बुद्धदेव ने पुरोहित स कहा—"महाराज क्या आपके पिताजी जीवित हैं ?"

पुरोहित ने कहा—"हाँ जीवित हैं।"

बुद्धदेव बोले—"तो फिर आप इन पशुओं के बजाय यदि ऐसे

पवित्र अवसर पर अपने पिता को स्वर्ग म भेजने की व्यवस्था करो, तो कितना अच्छा होगा ?"

बुद्धदेव की यह बात सुन कर राज-पुरोहित के क्रोध का ठिकाना न रहा और उसने उसी समय बुद्धदेव को महल से बाहर निकालने को द्वारपाल से कहा और स्वय बलिदान की तैयारी करने लगा।

परन्तु बुद्धदेव इस दुष्कृत्य को न देख सके और पहरेदारो से अपने को छुडाकर उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ पर पशु-बलि दी जाती थी और अपनी गर्दन आगे की ओर झुका कर खडे हो गये और बोले—"पुरोहित जी, आप प्रसन्नता-पूर्वक मेरी गर्दन पर छुरा चला दीजिये, क्योकि मैं और ये बकरे एक ही परमात्मा के अश है।"

राजा विम्बसार तथा सभी उपस्थित व्यक्ति बुद्धदेव की वाणी सुनकर शान्त हो गये और उन सबका ध्यान उस दिव्य आत्मा की ओर आकर्षित हो गया।

बुद्धदेव ने उपस्थित विशाल जन-समुदाय के सम्मुख भाषण करते हुए विम्बसार को सम्बोधित किया—"राजन! आप तथा आपके प्रजाजन अच्छी प्रकार से जानते है कि आप सभी जीवन का मूल्य चुकाने मे असमर्थ हैं, अर्थात्—किसी भी प्राणी का जीवन समाप्त करने के पश्चात् उसे जीवित करने की सामर्थ्य आपमे से किसी मे भी नही है, तो फिर आपको किसी के जीवन को नष्ट करने का क्या अधिकार है ? वस्तुत जीवन एक ऐसी अनुपम वस्तु है—जिसको छीनने एव नष्ट करने की तो शक्ति प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर विद्यमान है, परन्तु वापिस जीवित करने की शक्ति चक्रवर्ती सम्राटो के पास भी नही है।"

गुरुदेव ने आगे कहा— 'मनुष्य सभी प्राणियों का रक्षक एवं देव तुल्य है और जब आप सभी लोग यह चाहते हैं कि आपका देव आपको सुख-शान्ति प्रदान करे, तो फिर तुम देव मानने वाले प्राणी के गले पर छुरी क्यों चलाते हो ?

गुरुदेव ने वहाँ उपस्थित सभी व्यक्तियों के सम्मुख ऐसा सारगर्भित एवं दया से ओत-प्रोत उपदेश दिया कि सभी व्यक्तियो के हृदय पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा और बिम्बसार के अन्तस्तल पर उनकी वाणी का ऐसा चमत्कारिक प्रभाव पड़ा कि राजा ने सभी पशुओं को छुड़वा दिया और भविष्य मे इस प्रकार का बलिदान करने का विचार सदा के लिये त्याग दिया।

५७

भारद्वाज और बुद्धदेव

बुद्धदेव की प्रशमा सुनकर महर्षि भारद्वाज के एक सम्बन्धी ने उनका शिष्य बनने का विचार किया और वह उनके पास गया। बुद्धदेव ने उसको शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया।

जब महर्षि भारद्वाज को पता लगा, तो वे सीधे बुद्धदेव के पास गये और उनकी भर्तस्ना करने लगे। क्रोधावेश मे यद्यपि भारद्वाज के मुख से कुछ कठोर शब्द भी निकल पडे, परन्तु फिर भी बुद्धदेव कुछ न बोले।

जब भारद्वाज को अपशब्दो की बौछार करते हुए बहुत देर हो गई तो वे थक गये और स्वय ही चुप हो गये।

भारद्वाज के चुप हो जाने पर बुद्धदेव बोले—"भाई, आपके घर कभी महमान भी आते है या नही ?"

भारद्वाज बोले—"हां, आते हैं।"

बुद्धदेव बोले—'तो प्राय उन्हें खाने-पीने के लिए सामान देते हो ?"

भारद्वाज ने कहा— हाँ देते हैं।"

बुद्धदेव बोले "यदि अतिथि आपकी दी हुई सामग्री को स्वीकार न करे तो उनका क्या होता है ?"

भारद्वाज ने कहा— 'उस वस्तु को यदि अतिथि स्वीकार नहीं करता है तो वह मेरे घर में ही रह जाती है इसमें सन्देह की क्या बात है।"

बुद्धदेव बोले—"बस यही चीज यहाँ पर समझ लो कि जो अपशब्द और उपालम्भ आपने क्रोधवश मुझे दिये हैं वे मुझे स्वीकार नहीं है। क्योंकि प्रतिरोध में यदि मैं आपके ऊपर क्रोधित होता और आप मुझे बुरा-भला कहते तो आपकी भेंट मैं स्वीकार करता परन्तु जब मैं तो बोला भी नहीं और आप बराबर बुरा-भला कहते रहे तो किस प्रकार आपकी भेंट स्वीकार की जा सकती है ? अतः आपकी यह भेंट आपके पास ही रही।

भारद्वाज बुद्धदेव की बात सुनकर लज्जित हो गये और इसके पश्चात् उनके गुणों से इतने प्रभावित हुए कि स्वयं भी उनका शिष्य बनना स्वीकार कर लिया।

५८

मध्यम मार्ग

किसी नगर में एक बहुत बड़ा उत्सव होने वाला था, और उसमें नृत्य-प्रदर्शन के लिये कुछ नवयुवतियाँ जा रही थीं। नव-युवतियाँ आपस में इस प्रकार वार्तालाप करती हुई जा रही थीं कि "यदि सितार के तार मध्यम रूप के खींचे जाए तो नृत्य का काम उत्तम होता है। यदि सितार के तार परिमाण से अधिक खींचे जाएँ तो टूटने का भय रहता है और यदि कम खींचे जाएँ, तो तार ढीले पड़ जाते हैं और नृत्य का कार्य अच्छी प्रकार नहीं हो पाता है।"

उपरोक्त बात निकट ही बैठे हुए शाक्य मुनि ने सुन ली और वे बोल उठे—"ओह! कभी-कभी अज्ञानी व्यक्ति भी अपनी बातों में ज्ञानियों को ज्ञान प्रदान कर देते हैं।"

मुनि कहने लगे—"मैंने इस शरीर रूपी यंत्र के तारों को सीमा से अधिक खींचा हुआ है, इसलिए इनके टूटने का डर है। अर्थात्

हमने साधना में शरीर को इतना कष्ट दे दिया है कि किसी भी समय इसके नष्ट होने का भय है। यदि शक्ति निरन्तर क्षीण होती गई और फलस्वरूप शरीर नष्ट हो गया तो इष्ट-प्राप्ति की आशा भी नष्ट हो जाएगी। इसलिए अब इस शरीर को अधिक तपश्चर्या में न लगाकर, मध्यम मार्ग अपनाना चाहिए, क्योंकि शरीर भी उपयोगी साधन है।"

इस प्रकार सामान्य नारीजनाओं के वार्तालाप से भी शाक्य मुनि ने शिक्षा ग्रहण की और अति कठिन तपस्या व शरीर को घोर कष्ट देना बन्द करके मध्यम मार्ग अपना लिया।

अपने में किसी अभाव की पूर्ति के लिए यदि हम किसी गुण की अपेक्षा है, और वह यदि निम्न स्तर के व्यक्ति के पास है, तो भी उसे प्राप्त करने में हमें संकोच नहीं करना चाहिए।

५९

द्विज और शूद्र की पहचान

शाक्य मुनि गौतम ने बुद्धत्व प्राप्त करने से पूर्व अनेक साधु-सन्तो की सेवा-शुश्रूषा की और अपने शरीर को कठिन तपश्चर्या के द्वारा बहुत ही क्षीण बना डाला। कहते हैं कि उनकी यह तपश्चर्या निरन्तर छह वर्ष तक चलती रही। कभी-कभी तो वे अपने आहार मे अन्न का केवल एक दाना ही ग्रहण करते थे। इसी से उनकी कठिन तपश्चर्या की जानकारी की जा सकती है कि उन्होने अपनी साधना के लिये कितना तप व त्याग किया।

इस प्रकार की कठिन तपस्या से उनके शरीर का बल बहुत ही क्षीण हो गया था। यद्यपि आध्यात्मिक दृष्टि से वे बहुत ही शक्तिशाली हो गये थे, परन्तु शारीरिक दृष्टि से निर्बल हो गये थे।

इस कठिन तपस्या के कारण एक दिन वे मूर्छित हो गये और पृथ्वी पर गिर पड़े। निर्बलता के कारण से उनके अन्दर चलने और स्वयं उठने तक की भी शक्ति न रही।

एक गडरिये का लड़का उधर आ निकला और उसने मुनिजी को इस प्रकार की अवस्था में पड़ा हुआ देखा। मुनिजी को देखते ही उसके मन में दया आ गई और उसने तुरन्त ही उनके शरीर को कड़ी धूप से बचाने के लिये जंगल में से पत्ते इकट्ठे किये और उनका एक छप्पर बना कर उनके शरीर की रक्षा की।

इसके पश्चात् उस लड़के ने बकरी के स्तन से दूध निकाला और मुनिश्री जी के मुंह में डाल दिया। कुछ समय पश्चात् मुनि जी को चेतना आई और उन्होंने उस लड़के से लोटे में पीने के लिये दूध माँगा।

लड़का सकोचवश खड़ा हो गया और बोला—"महाराज मैं तो शूद्र हूँ इसलिए आप मेरे लोटे में रखा हुआ दूध कैसे पी सकते हैं? आप तो एक पवित्र आत्मा वाले ऋषि हैं इसलिए सम्भव है कि मेरे स्पर्श से अपवित्र बन जाएँ।

मुनि श्री बोले—"बेटा रक्त की दृष्टि से किसी प्रकार का जातीय भेद नहीं हो सकता क्योंकि सभी प्राणियों का रक्त लाल होता है। इसी प्रकार आँसू से भी जाति का भेद-भाव नहीं जाना जा सकता है क्योंकि सभी मनुष्यों के आँसू खारे होते हैं।"

मुनि श्री ने आगे कहा—"जब बालक जन्म लेता है तो उसके ललाट पर तिलक गले में जनेऊ नहीं होता है। ये वस्तुएँ तो व्यक्ति बाद में अपनी परम्परानुसार धारण करता है। जो व्यक्ति अच्छे कार्य करता है, वही उच्च कुल का है जो नीच कार्य करता

है, वह छोटी जाति का है। इसलिए मुझे तुम्हारे और अपने अन्दर कोई भेद-भाव दृष्टिगोचर नही हो रहा है। तेरी आत्मा शुद्ध है, इसलिए तू इस समय परमात्मा के समान है।"

मुनिजी के वाक्य सुनकर वह लडका इतना प्रभावित हो गया कि उनके चरणो मे प्रणाम किया और सहर्ष उनको पीने के लिए दूध दे दिया।

६०

विश्व विजय से इन्द्रिय-विजय कठिन

एलेक्जेण्डर (सिकन्दर) ने अपने पराक्रम से ईरान हिन्दुस्तान मिस्र आदि देशों पर विजय प्राप्त की परन्तु वह अपने स्वयं के ऊपर विजय प्राप्त न कर सका।

एक दिन एलेक्जेण्डर ने क्रोधवश अपने प्रिय मित्र पर भी आक्रमण कर दिया और उसे मौत के घाट उतार दिया।

उसने अपने मित्र पर आक्रमण करके उसको मार तो दिया परन्तु अपने इस दुष्कृत्य पर अत्यन्त खेद का अनुभव किया।

क्योंकि वह शराब भी पीता था इसी कारण से सदा संयम का पालन करने में व उचित-अनुचित का ज्ञान प्राप्त करने में प्रायः असफल रहता था।

किसी विद्वान् ने एक दिन प्रसंगवश बादशाह के सामने कह ही दिया—'मानव के लिये संसार जीतना सरल है परन्तु स्वयं अपने को जीतना अत्यन्त कठिन है।

●●
●

६१
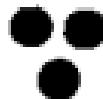
हावर्ड की उदारता

इङ्गलेण्ड मे जार्ज हावर्ट नामक एक परोपकारी व्यक्ति हुआ है, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन इस प्रकार के सत्कार्यों मे लगा दिया था।

एक वार हावर्ड समुद्र के जहाज द्वारा यात्रा कर रहे थे, तो उनके जहाज को फ्रांस के लोगो ने पकड लिया और उनको वन्दी वना लिया। साथ ही उनके साथियो को भी पकड लिया।

हावर्ट और उसके साथियो को अडतालीस घंटे तक विना अन्न और पानी के रखा गया। इसके पश्चात् ब्रेम्ट नामक एक गन्दगीपूर्ण स्थान पर उनको रखा गया और विश्राम के लिये घास दी गयी। खाने के लिये उनके सामने कभी-कभी कोई मास का लोथडा फेंका जाता था, जिसे उठाने के लिये वे गृद्ध की भांति झपटते थे।

कुछ समय के पश्चात् हावर्ट को कारावास से मुक्त कर दिया गया। वह वन्दीगृह से वाहर तो आ गए, परन्तु उनको हर समय

बन्दियों की दशा एवं उनके साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार के विचार आते रहते थे क्योंकि मनोविज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है।

दूसरे बन्दी अपराधियों के बारे में प्रायः वे यही सोचते रहते थे कि यह तो ठीक है कि उन्होंने अपराध किया है फिर भी आखिर तो वे मनुष्य हैं इसलिए बन्दियों के साथ ऐसा अनुचित एवं अमानवीय व्यवहार नहीं होना चाहिए। दण्ड और कारावास का मुख्य उद्देश्य अपराधी के सुधार का होना चाहिए, जिससे मनुष्य भविष्य में अपने जीवन को सुधार सके और अच्छा नागरिक बनकर शेष जीवन शान्ति एवं सद्भाव के साथ व्यतीत कर सके।

ऐसा सोचते हुए उन्होंने निश्चय किया कि मैं जीवन भर बन्दियों की दशा सुधारने के लिये प्रयत्न करता रहूँगा और इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वे अपने इस शुभ एवं महान् कार्य में संलग्न हो गये।

इसके पश्चात् वे भिन्न-भिन्न जेलों में गये और वहाँ के अधिकारियों से मिलकर बन्दियों के भोजन स्थान एवं व्यवहार के सम्बन्ध में उचित बातों की ओर बन्दियों की प्रत्येक सम्भव सुख-सुविधा का प्रबन्ध कराया। उनके इस प्रयत्न से अधिकारियों को भी समझने में देर न लगी कि बड़े से बड़े अपराधी को उचित व्यवहार एवं शिक्षा देकर कुमार्ग से सुमार्ग पर लाया जा सकता है और यह कार्य कड़ा दण्ड एवं यातना देने के बजाय मानवीय सद्व्यवहार द्वारा आसानी से पूरा किया जा सकता है।

६२

हजरत उमर और एक शराबी

हजरत उमर नामक एक प्रसिद्ध वादशाह हुए है, जो कि अपनी प्रजा की सुख-सुविधा का पूर्ण ध्यान रखते थे। वह बहुधा गुप्त वेश मे नगर की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये निकलते थे। ऐसा करने का उनका उद्देश्य—केवल दीन-दुखियो की पीडा दूर करना और प्रजा की वास्तविक स्थिति का पता लगाना ही था।

एक दिन वादशाह इसी उद्देश्य के लिये नगर मे घूमने के लिए निकले। रात्रि के १२ बजे थे। जब वे एक मकान के निकट होकर जा रहे थे, तो उनको उस घर के अन्दर से हँसी एव मसखरी की ध्वनि सुनाई पडी। वादशाह ने सोचा कि यहाँ कैसे मूर्ख व्यक्ति रहते ह, जो स्वय भी रात्रि मे जगते है और अपने पडोसियो की निद्रा को भी भग करते है। इस प्रकार सोचकर वादशाह ने उनकी जाँच-पडताल करनी चाही।

बादशाह एक ऊँची दीवार पर चढ़ गये और एक रोशनदान से अन्दर झाँक कर देखने लगे। बादशाह ने देखा कि अन्दर मकान में एक नवयुवती और एक व्यक्ति दोनों बैठे हुए हैं और उनके सामने शराब की बोतल रखी है जिसमें से प्याले भर भर कर वे पी रहे हैं और इस प्रकार नशे में मस्त होकर हँस रहे हैं।

बादशाह अपनी नगरी में ऐसा कुकृत्य देखकर क्रोधित हो गये और वहीं पर खड़े हुए उन्होंने कहा— "बेशर्म बेगैरत! आप को ऐसा कुकर्म करते हुए शर्म नहीं आती है। क्या तुम लोग यह समझते हो कि खुदा तुम्हारे पाप-कर्मों को नहीं देख रहा है?"

मदमस्त प्रेमियों के कान में जब अचानक यह कठोर शब्द पड़े तो उनका नशा हिरन (दूर) हो गया और ऊपर रोशनदान की तरफ देखने पर उन दोनों को बादशाह का उत्तेजित चेहरा दिखाई दिया। चेहरा देखकर उन्होंने बादशाह को पहचान लिया और मन में सोचने लगे कि अब जान बचना असम्भव है, क्योंकि बादशाह मदिरा-पान के पाप-कर्म के लिये कदापि क्षमा न करेगा। बादशाह के भय के कारण वे दोनों थर-थर कांपने लगे।

पराये मकान पर रात्रि में अधिक ठहरना उचित न समझ कर बादशाह ने उन दोनों को दूसरे दिन दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया और अपने अंग-रक्षकों सहित महल को वापिस लौट गया।

शाही हुक्म के अनुसार दोनों (युवक-युवती) दूसरे दिन दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह ने दोनों को अपने निकट बुला या और गम्भीर स्वर में कहा— "जानते हो खुदा की नगरी में तुम दोनों कितने बड़े गुनहगार हो?"

युवक शरावी चतुर भी था और हाजिर जवाब भी। वह तुरन्त बोला—"हजूर, यदि आप क्षमा करदें तो एक बात कह दूँ?"

इस पर वादशाह ने स्वीकृति दे दी, तो वह बोला—"हजूर, मैंने तो शराव पीने के रूप मे केवल एक अपराध किया है, परन्तु आपने खुदा की नजरो मे तीन अपराध एक साथ किये है। क्या आपको खुदा का डर नही है?"

वादशाह ने उत्कण्ठित होकर कहा कि—"वे तीनो अपराध कौन-कौन से हैं, शीघ्र ही वतलाओ।"

शरावी ने कहा—"पहला अपराध तो यह है कि आपने किसी की गुप्त वात को प्रकट किया, जव कि खुदा की नजरो मे किसी के गुप्त भेद का रहस्य खोलना पाप है।"

"दूसरा अपराध यह है कि आपने मकान के मुख्य द्वार से प्रवेश नही किया, जव कि खुदा का हुक्म है कि किसी के घर पर जाओ तो मुख्य द्वार से प्रवेश करो।"

"तीसरा अपराध खुदा के हुक्म के अनुसार यह है कि यदि किसी के घर जाओ तो सवसे पहले उसे सलाम करो, लेकिन आपने इसका भी पालन नही किया।"

वादशाह युवक की वात सुनकर चुप हो गया और उसने अपनी भूल स्वीकार करली। क्योकि दण्ड-विधान के तुलनात्मक दृष्टिकोण से वादशाह स्वय भी अपराधी सिद्ध हो चुका था, इसलिए शरावी युवक-युवती को कठोरतम दण्ड देना सम्भव नही था। परन्तु फिर भी उस शरावी से भी जीवन मे ऐसा दुष्कर्म न करने की प्रतिज्ञा करा ली।

इस प्रकार बादशाह ने अपने अपराध का स्वयं पश्चाताप किया और दोनों अपराधी अभियुक्तों को भी इस बात के लिये विवश कर दिया कि भविष्य में वह ऐसा कार्य न कर सकें।

बादशाह के इस कार्य से जन-साधारण पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा और दिन-प्रतिदिन इस प्रकार के सुधार कार्यों से प्रजा का चारित्रिक स्तर उत्तरोत्तर ऊँचा होता गया और बादशाह के प्रति प्रजाजनों की श्रद्धा एवं विश्वास में वृद्धि होती गई।

६३

दुष्टता की पराकाष्ठा

छिद्दा नाम का एक व्यक्ति जीवन की तरुण अवस्था को तो आसानी से पार कर गया, परन्तु वृद्धता के कारण जब हाथ-पैर चलने बन्द हो गये, तो निराश हो गया। यद्यपि उसके तीन पुत्र थे, परन्तु कोई भी अपने वृद्ध पिता की सेवा करने को तैयार न था।

वृद्ध ने एक दिन अपने तीनो लडको को पास बुलाया और कहा—

"तुम लोगो ने आज तक न तो मेरी आज्ञा ही स्वीकार की है, और न मेरी सेवा-सुश्रूषा का ही ध्यान रखा है। आज मेरे जीवन का अन्तिम दिन है, और क्योकि मैं परलोक जाने वाला हूँ, मेरी अन्तिम इच्छा को जो भी पुत्र पूर्ण करेगा, वही मेरी अर्थी को हाथ लगा सकेगा और जो पुत्र मेरी अन्तिम इच्छा पूर्ण करने मे योग नही देगा, वह मेरी अर्थी को नही छू सकेगा।"

वृद्ध के विचारों एवं स्वभाव से सभी पुत्र भली-भांति परिचित थे इसलिए वे चुपचाप बने रहे। परन्तु एक पुत्र को जो कि कुछ समय से बाहर रह रहा था कुछ दया आ गई और उसने अन्तिम इच्छा को पूर्ण करने का वचन दे दिया।

वृद्ध ने उस पुत्र के कान में धीरे से कहा—"मेरे पड़ौसियों ने सदा ही मेरे साथ वैर भाव रखा है और वे सदा ही मेरे विरोधी रहे हैं, इसलिए मेरी इच्छा यह है कि मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े करके पड़ौसियों के घरों में डाल दिये जाएँ और पुलिस में रिपोर्ट कर दी जाए। उस रिपोर्ट में यह लिखाना कि इन लोगों ने जीवन भर हमारे पिता जी को कष्ट दिये और अन्तिम समय में उनके शरीर को भी काट-काट कर अपने घर ले गये। इस प्रकार मृत्यु के पश्चात् मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े करने में मुझे भी कष्ट न होगा और परिणाम स्वरूप पड़ौसियों की जो दशा होगी उसके अनुमान से ही मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा है।

"अन्तिम समय में भी दुष्ट को दुष्टता का ही ध्यान रहता है।

६४
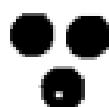
जैसे को तैसा

एक जमीदार वहुत ही लालची था। दीन-दुःखी को कभी भी एक पैसा तक भी नही देता था। नौकरो के साथ भी वहुत ही निर्दयता का व्यवहार करता था। यहाँ तक कि कभी दो पैसे का भी नुकसान हो जाता था, तो नौकर के वेतन मे से काट लेता था।

जव कभी कोई नौकर किसी कारणवश देर से आता, तो उसकी अनुपस्थित गिन लेता और उस दिन के पैसे उसके वेतन से काट लेता था। नौकर जमीदार के इस कठोर व्यवहार से वहुत ही दुखी एव निराश रहते थे। जिस व्यक्ति को दुर्भाग्यवश रोटी-रोजी का अन्य कही पर ठिकाना न मिलता, वही अभागा उस जमीदार के यहाँ नौकरी करने आता था।

एक दिन जमीदार वेलगाडी मे वैठकर जमीदारी वसूल करने के लिये जा रहा था। साथ मे एक नौकर भी था, जो कि गाडी के पीछे-पीछे चल रहा था।

जमींदार को एकाएक ध्यान आया कि यह नौकर आज आध घंटा देर से आया है, इसलिए वह नौकर से बोला—"आज तू देर से आया है इसलिए आज की तेरी गैरहाजिरी लगेगी।

नौकर बहुत गरीब था और घर पर बाल-बच्चों के पेट भरने का अन्य कोई साधन नहीं था इसलिए उसने जमींदार के पैर पकड़ लिये और देरी से आने की क्षमा माँगने लगा। परन्तु जमींदार कब मानने वाला था उसने बैलगाड़ी को तेज करा दिया और कुछ आगे निकल गया। बेचारा नौकर कुछ दूर पर पीछे रह गया।

कुछ दूर चलने के पश्चात् सामने से डाकू दिखलाई दिये और उन्होंने जमींदार की गाड़ी को घेर लिया। जमींदार घबरा गया और सहायता के लिये नौकर को पुकारने लगा।

इस दुर्घटना के समय जमींदार की पुकार सुनकर नौकर ने सोचा कि जब मालिक इतनी निर्दयता करता है तो मैं आपत्ति में क्यों पड़ूँ। इसलिए उसने जमींदार को सम्बोधित करते हुए ऊँचे स्वर से कहा— 'महाराज बहुत दूर से नंगे पैर पैदल चलने के कारण मेरे पैरों में छाले पड़ गए हैं और अब एक कदम चल सकना भी मेरे लिए मुश्किल है, इसलिए आज की मेरी गैर-हाजिरी ही कर दीजिये और आज के पैसे काट लीजिये पैरों के छाले ठीक होने पर ही कुछ दिन बाद मैं दुबारा आपकी सेवा में उपस्थित हो सकूँगा।

६५

ईर्ष्या का परिणाम

दो पंडित दक्षिणा प्राप्त करने के उद्देश्य से एक सेठ के यहाँ पहुँचे। दोनो पडित विद्वान् थे, परन्तु दोनो को ही अपनी विद्वत्ता का बडा अभिमान था।

उनमे से एक पडित जब स्नान करने के लिये चला गया तो सेठ जी ने दूसरे पडित से पूछा—"महाराज, यह पडित तो बहुत विद्वान् प्रतीत होता है।"

एक पडित दूसरे की प्रशसा कब सुन सकता है, इसलिए वह तुरन्त मुँह बनाकर बोल उठा—"सेठ जी, विद्वान तो इसके पडोस मे भी नही रहते हैं। यह तो निरा बैल है, बैल।" यह सुनकर सेठ जी चुप हो गये।

स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर जब पहला पंडित वापस आ गया और यह दूसरा स्नान-ध्यान के लिए चला गया तो सेठ जी ने पहले पंडित से कहा—"महाराज, आपके साथी तो प्रकाण्ड विद्वान् हैं।"

पहला पंडित हृदय की स्वाभाविक ईर्ष्या को दबा न सका और बोला— विद्वान् कुछ भी नहीं है कोरा पशु है।

सेठ को दोनों के उत्तर से बहुत आश्चर्य हुआ और वह समझ गया कि इस प्रकार का ईर्ष्या-भाव रखने वाले मनुष्य पंडित न होकर पाखंडी ही होते हैं, इसलिए जैसा इन्होंने उत्तर दिया है उसी के अनुसार इनकी आव-भगत होनी चाहिये।

जब भोजन का समय आया तो दोनों पंडित आसन पर बैठ गये। कुछ ही देर में सेठ जी आये और भोजन के बजाय एक के सामने भूसा और दूसरे के सामने घास रख दिया।

सेठजी के इस व्यवहार से दोनों पंडितों ने अपना बहुत बड़ा अपमान समझा और वे आग-बबूला हो गये।

पंडितों को क्रोधित अवस्था में देखकर सेठ जी हाथ जोड़कर बोले—"महाराज मैं तो आप दोनों को बहुत ही विद्वान् समझता था और सदा ही आपका आदर-सत्कार करता था तथा यथा-शक्ति दान-दक्षिणा दिया करता था परन्तु आज आप दोनों ने जो परिचय दिया है अर्थात् एक-दूसरे को बैल और गधा बतलाया है उसी के अनुसार मैंने भोजन का प्रबन्ध कर दिया। अब आप ही बतलाइये कि इसमें मेरा क्या अपराध है ?"

सेठ जी की बात से दोनों पंडित बहुत ही लज्जित हुए और अपने मन में यह समझते हुए कि ईर्ष्या का फल बुरा होता है उसी समय सेठ जी के मकान से बाहर चले गए।

६६

पर्दे का पाप

एक दम्पत्ति ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने की प्रतिज्ञा की थी। प्रतिदिन वे साथ-साथ ही रहते, खाना-पीना खाते, सोते, उठते-बैठते, हँसते-खेलते, पर कभी भी उनके मन मे वासना का ख्याल तक न आता था।

इस प्रकार उनको साथ-साथ रहते हुए कई वर्ष व्यतीत हो गये। इस दशा को देखकर कामदेव ने अपने प्रभाव की विफलता अनुभव की और एक दिन युवक का मन चलायमान कर दिया और मन के किसी कोने मे छिपा हुआ पाप मुँह पर आ गया।

पत्नि ने काम-पीडित पति को बहुत ही समझाया और कई बार उस प्रतिज्ञा की स्मृति भी करायी, जो कि उन्होंने कई वर्ष पूर्व की थी और जिसके आधार पर अब तक नियम-पूर्वक रह रहे थे, परन्तु पति की समझ मे कुछ न आया।

रात के समय जब विश्राम का समय आया और पति-पत्नी शयन कक्ष मे जाने लगे, तो पत्नी ने कहा—"अच्छा यदि आप

नहीं मानते हो तो कम से कम बाहर तो देख आओ कि कोई हमें देख तो नहीं रहा है।"

पति बाहर गया तो देखा कि एक व्यक्ति गले में ढोल डाले हुए दीवार के निकट खड़ा हुआ है। युवक ने जब उससे वहाँ खड़े होने का कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया—

'आज प्रसिद्ध शीलवान प्रेमियों के व्रत भंग होंगे इसलिए इस समाचार की डौंडी पीटने को खड़ा हुआ हूँ।

युवक इस प्रकार उत्तर सुनकर आश्चर्य-चकित हो गया और पूर्व की भाँति मन से काम-वासना को त्याग-कर चुप-चाप निद्रा में लीन हो गया।

सुबह उठकर देखा तो ढोल वाला चला जा रहा था जब उससे पूछा गया कि अब क्यों जा रहे हो तो उसने कहा—

"अब व्रत भंग न होगा इसलिए जा रहा हूँ"

इस पर पत्नी ने प्रसन्नता से कहा— 'देखा आपने! पाप चाहे सात पर्दों के भीतर भी क्यों न किया जाए, फिर भी वह तालाब की काई के समान जन जन के मुँह पर आ जाता है।

पाप एक प्रकार का अंधेरा है, जो ज्ञान का प्रकाश होते ही मिट जाता है।

—प्रशान्त

पाप छिपाने से बढ़ता है।

—वेद व्यास

७

असन्तोष

एक व्यक्ति बहुत ही दीन था। वह सदा ही असतोष की भावना अपने मन मे रखता था। उसकी प्रबल इच्छा थी कि कही से धन प्राप्त हो जाए, तो जीवन की सभी आवश्यकताऍं पूर्ण कर लूॅं और आनन्द-पूर्वक जीवन व्यतीत करूँ।

इसी कामना से वह एक सत के पास जाया करता था। एक दिन सत ने उसकी सेवा-भक्ति से प्रसन्न होकर उसको एक पारस मणि दी और कहा—"सात दिन के अन्दर जितना स्वर्ण चाहिए, उतना बना लो। आठवे दिन यह पारस मणि वापिस ले ली जाएगी।"

वह व्यक्ति पारस मणि को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने छै दिन तक एक क्षण को भी विश्राम न किया और जितना लोहा वह एकत्रित कर सकता था, उतना ही कर लिया। अपनी समस्त सम्पत्ति को बेचकर

लोहा खरीद लिया और उसे इधर-उधर जहाँ से भी उधार मिल सका था लोहा मिल सकता था एकत्रित कर लिया। लोहा रखने के लिये उसने कई मकान भी किराये पर ले लिये। उसके इस काम से पड़ोस के व्यक्तियों को बहुत आश्चर्य हुआ परन्तु उसने किसी को भी इसका रहस्य नहीं बतलाया।

जब उस व्यक्ति ने देखा कि आज सातवां दिन है और आस-पास का सभी लोहा खरीदा जा चुका है इसलिए यहाँ लोहा न मिल सकेगा तो वह कुछ रुपया उधार लेकर दूसरे नगर से लोहा खरीदने के लिये चल दिया। वहाँ पर पहुँच कर जितना भी लोहा मिल सकता था खरीदा। लोहा खरीदने में उसे समय का भी ध्यान नहीं रहा।

जब उसे संत की बात का ध्यान आया कि आज सातवां दिन है और कल पारस मणि मेरे से ले ली जाएगी उसने शीघ्रता में मोटर किराये पर की और लोहा भर कर चल दिया।

केवल एक घंटा दिन शेष था और उसे विश्वास था कि रात के दस बजे तक घर पहुँच जायेंगे और पहुँचते ही समस्त लोहे का स्वर्ण बनाकर सुबह पारस मणि उसी संत को वापिस कर देंगे।

उसको चलते-चलते रात के बारह बज गये परन्तु वह अपने नगर तक नहीं पहुँच पाया इसलिए वह बहुत घबरा गया। उसने निकट के एक गाँव से पता लगाया तो मालूम हुआ कि वह असली से दूसरे रास्ते पर जा रहा है और घर ४ मील पीछे रह गया है।

उसने ड्राइवर को मोटर तेज गति से चलाने को कहा। मोटर में भार बहुत था इसलिए वह वहाँ से कुछ दूर चलकर खराब हो गई।

अब तो वह व्यक्ति बहुत घबराया। इधर-उधर भी भागा, परन्तु उसे न तो कोई गाँव ही दिखलाई दिया और न नगर ही। थकान से उसके हाथ-पैर टूट रहे थे। जब उसे कोई सफलता न मिली और उसे अन्य सवारी की आशा भी न रही तो वह पैदल ही घर की ओर दौडा।

घर वहाँ से चालीस मील दूर था और रात के दो बज चुके थे। जितनी तेजी से दौड सकता था, वह दौडा। सुबह के चार बजे उसे मालूम पडा कि वह केवल १५ मील का मार्ग तय कर सका है और पच्चीस मील का रास्ता शेष है। उसका हाल बेहाल हो गया। शरीर थकान के कारण चूर-चूर हुआ जा रहा था। समस्त शरीर पसीने मे भीगा हुआ था। मन मे अत्यन्त घबराहट थी। उसे विश्वास हो गया कि आज सर्वस्व लुट जाएगा, क्योकि मैं घर पर सुबह से पूर्व न पहुँच सकूँगा। सुबह होते ही मुझ से पारस-मणि लेने के लिये सत के शिष्य आ जाएँगे जो कि एक सेकिण्ड भी मणि को मेरे पास नही रहने देंगे।

वह साहस पूर्वक पाँच मील और दौडा, परन्तु वह इतना थक चुका था कि अचेत होकर गिर पडा। उसे कुछ भी पता न रहा कि वह कहाँ है।

सुबह के आठ बजे उसे कुछ चेतना आई, परन्तु जब उसे ध्यान आया कि अब तो समय निकल चुका है, इसलिए भयकर हानि उठानी पडेगी। इस प्रकार चिन्ता-ग्रस्त वह कुछ देर वही पर बैठा रहा।

कुछ समय पश्चात् वह सवारी को पाने मे सफल हुआ और दिन के दस बजे घर पहुँच गया। घर पहुँचने से पूर्व ही पारसमणि

उससे ले ली गई। वह निराश अपने किये पर पश्चाताप करता हुआ घर पहुँचा। इस घटना के पश्चात् उसने वहाँ रहना उचित नहीं समझा क्योंकि लोहे की खरीद के लिए दूसरों से रुपया उधार लेने के कारण वह बहुत कर्जदार बन चुका था।

उसने चुपचाप अपने वस्त्रों की गठरी बाँधकर तैयार कर ली और रात्रि के बारह बजे सुनसान और अन्धकार पूर्ण वातावरण में इतनी दूर चला गया कि इसके पश्चात् वह कभी भी किसी परिचित व्यक्ति को नहीं मिला।

[illegible] मनुष्य संसार में अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहते।

—शेक्सपियर

६८

न्याय का खून

एक सेठ वकील साहव के पास वैठा हुआ अपने मुकद्दमे के सम्वन्ध मे परामर्श कर रहा था। सेठ शिक्षित नही था, इसलिए वकील को उसे समझाने मे परिश्रम करना पड रहा था।

सेठ और वकील को वार्तालाप करते सुनकर एक राहगीर भी उनके पास खडा हो गया। राहगीर को यह समझते हुए देर न लगी कि वकील साहव किस प्रकार एक सीधे-सादे सेठ को इधर-उधर की वातें पढा रहे हैं।

जव वकील साहव को यह सन्देह हुआ कि ऐसा न हो कि सेठ अदालत मे पहुँच कर न्यायाधीश के सामने कुछ अट-शट कह दे और सव मामला ही उल्टा हो जाए, इसलिए उसने सेठ को लिखकर देना ही उचित समझा, जिससे वह उसे रट ले और अदालत मे भूल न जाए।

जैसे ही वकील ने लिखना प्रारम्भ किया तो उसके हाथ से कलम छूट कर नीचे गिर पड़ी। कलम को गिरते ही पास में खड़े हुए राहगीर ने उठा लिया और यह कहते हुए कि—"यह लो अपनी छुरी" वकील को कलम दे दिया।

वकील साहब को राहगीर की बात से बहुत आश्चर्य हुआ और उन्होंने ऐसा कहने का कारण पूछा।

राहगीर बोला—"सैकड़ों छुरियाँ भी यह काम नहीं कर सकती है, जो यह आपकी एक छोटी-सी कलम करती है। छुरी से मारने पर तो कुछ ही क्षण कष्ट होता है परन्तु यह तो तड़पा-तड़पा कर मारती है। आप लोग अदालत के अन्दर जो कुछ भी काले को सफेद और सफेद को काला करते हैं यह सब इस कलम रूपी छुरी की सहायता से ही करते है।"

आपकी इसी कलम की सहायता से न जाने कितने अपराधी मुक्त किये जाते हैं और कितने ही निरपराधियों को दंड दिया जाता है।

राहगीर की सीधी-साधी और निष्कपट बात सुनकर वकील एवं सेठ दोनों ही चकित हो गये।

६१

मन रूपी कुत्ता

एक दिन एक शिष्य अपने गुरु से बोला—"गुरुजी, मैं अपना अधिक से अधिक समय शास्त्रो के अध्ययन मे लगाता हूँ, परन्तु फिर भी मन मे खराब विचार आ ही जाते है।"

गुरुजी बोले—"किसी सेठ ने कुत्ता पाला, जो कि बहुत ही सुन्दर था। सेठ जी कुत्ते को अच्छे से अच्छा भोजन खिलाते और बडे प्रेम से रखते थे। इस प्रकार के व्यवहार से कुत्ता सेठ से बहुत ही परिचित हो गया था।

एक दिन सेठ के यहाँ कोई उत्सव था। उत्सव मे उसके मित्र एव बडे-बडे अधिकारी भी उपस्थित थे और उनके पास ही सेठ भी बैठा हुआ था।

कुत्ता सेठ के पास आया और अपनी आदत के अनुसार उसके मुँह को चाटने लगा। कुत्ते के इस कार्य से सब के बीच मे बैठा

हुआ मठ बन्द हो मरम्मत हुआ। जब वे सभी माल चले गये तो कोषित मठ ने उस कुत्ते को उसी दिन घर से निकाल दिया।

बस यही स्थिति मनुष्य के मन की है। यदि मन को आवश्यक सुविधा दी जाती है और उसकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति की जाती है तो वह इतना बिगड़ जाता है कि अन्त में मनुष्य को शर्मिन्दा ही होना पड़ता है। और यदि मन को बन्धन में रखा जाए तो फिर इसके अन्दर अनेक अच्छे विचार हो जाते हैं बुरे नहीं।"

जिसने मन को जीत लिया, उसने जगत को जीत लिया।

—स्वामी शंकराचार्य

७०

आत्मा ही परमात्मा

एक धनवान सेठ की पुत्री के साथ किसी निर्धन पडौसी की लडकी की मित्रता हो गई। दोनो सहेलियाँ प्रतिदिन एक-दूसरे से मिलती थी और आपस मे बहुत ही स्नेह रखती थी।

निर्धन की लडकी सेठ की लडकी के पास नित्य-प्रति आती रहती थी, परन्तु उसके मन मे सकोच अवश्य बना रहता था। सेठ की लडकी इस स्थिति को समझ गई।

एक दिन उसने अपनी सहेली से कुछ लोहा मँगवाया, जिससे वह घर मे रखी पारसमणि से स्वर्ण बना सके और निर्धन सहेली की निर्धनता को दूर कर सके।

जब उसकी सहेली लोहा ले आई तो उसने घर से पारसमणि निकाल कर लोहे को छुआ दिया, परन्तु लोहा स्वर्ण के रूप मे परिवर्तित नही हुआ। सेठ की पुत्री को ऐसा देखकर बहुत ही

आश्चर्य हुआ। उसने सोचा—पारसमणि बेकार हो गई, अतः वह दौड़कर पिता जी के पास गई।

सेठजी ने पुत्री का सब वृत्तान्त सुनकर कहा—"बेटी इस लोहे पर तो जंग कीट आदि लगा हुआ है, इसलिए पहले इसे दूर करो, तभी लोहे का स्वर्ण बन सकता है।"

अब की बार लड़की ने वैसा ही किया, तो लोहा स्वर्ण में परिवर्तित हो गया।

बस इसी प्रकार आत्मा पर मद माया लोभ और मोह आदि विकारों का कीट चढ़ा रहता है इसीलिए वह आत्मा परमात्मा नहीं बन सकती। और यदि इन सब विकारों को दूर करके निर्मल एवं शुद्ध भावना से प्रभु का स्मरण करें, तो आत्मा परमात्मा बन सकती है।"

यह आत्मा ही ब्रह्म है।

—बृहदा उपनिषद्

७१
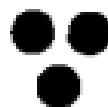
लोभ में सत्य का लोप

एक पुस्तक प्रकाशक एव विक्रेता बहुत ही लालची था। वह विद्यार्थियो को सदैव ही अधिक मूल्य पर पुस्तक बेचा करता था, और यदि कोई बालक अपनी पुस्तक बेचने की लिये उसकी दुकान पर पहुँचता तो कम से कम मूल्य देता था।

एक दिन उसकी दुकान पर बहुत भीड लगी हुई थी। क्योंकि स्कूल-कालिज खुलने का समय था, इसलिए सुबह से शाम तक भीड लगी रहती थी। उसी समय एक विद्यार्थी अपनी पुरानी पुस्तक बेचने के लिये दुकान पर आया। उसने अपनी पुस्तक दुकानदार के नौकर को दिखाई और उसका मूल्य पूछा।

नौकर ने जब उस पुस्तक का मूल्य मालिक से पूछा, तो उसने पुस्तक का मूल्य चार रुपये बतलाया। विद्यार्थी अपनी पुस्तक का मूल्य सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ, परन्तु जैसे ही नौकर ने सेठ

की ओर यह संकेत किया कि यह तो बेच रहा है, खरीद नहीं रहा तो सेठ एकदम बोले—"इस पुस्तक की कीमत केवल बारह आने मिल सकेगी।

पुस्तक बेचने वाला विद्यार्थी कुछ हँस-मुख प्रकृति का था इसलिए कहने लगा— 'सेठ जी इस पुस्तक की कीमत बेचते समय तो चार रुपये और खरीदते समय केवल बारह आने ऐसा क्यों ?"

परन्तु सेठ ने कोई उत्तर नहीं दिया। सेठ का ऐसा भेद-भाव-पूर्ण व्यवहार देखकर सभी ग्राहक धीरे-धीरे दुकान से खिसक गये और इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि इसके पश्चात् उसकी दुकान पर कभी इतनी भीड़ नहीं देखी गई।

लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ न कबहूँ कीजिए, यामें नरक निदान।

—कबीर

७२
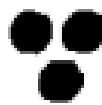
प्रताप का स्वाभिमान

जिन दिनो महाराणा प्रताप निर्जन जगलो और पर्वतो मे भटकते फिर रहे थे, उन्ही दिनो मेवाड का एक भाट पेट की भूख-ज्वाला को शान्त करने के लिये मुगल-सम्राट् अकबर के दरबार मे पहुँचा। जब वह बादशाह के सम्मुख पहुँचा, तो उसने अपने सर से पगडी उतार ली और बगल मे दबाकर सलाम किया।

अकबर ने जब भाट की यह उद्दंडता देखी तो एकदम क्रोधित हो उठा और कडे स्वर मे बोला—"जानता है! पगडी उतार कर सलाम करना, कितना बडा अपराध है?"

भाट दीनता-पूर्वक बोला "क्षमा, अन्नदाता! जानता तो सब कुछ हूँ, परन्तु क्या करूँ आदत से मजबूर हूँ। यह पगडी हिन्दू-कुल-भूषण महाराणा प्रताप की दी हुई है। जब वे अत्यन्त कष्ट झेलते हुए भी आपके सम्मुख नही झुके, तो उनकी दी हुई यह

७३
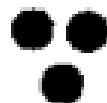
शत्रु पर विजय

एक अभियुक्त जेल मे वदी रहता हुआ भी विद्रोह की भावना रखने लगा। वह समझता था कि अब मुझे वन्दी रखना न रखना केवल जेलर की इच्छा पर निर्भर है। यदि वह मुझे इस जेल से छोडना चाहे तो छोड सकता है, परन्तु अपनी हठधर्मी के कारण ही मुझे वदी वनाये हुए है। इसलिए वह जेलर के नाक-कान काटने की सोच रहा था।

किसी विश्वसनीय सूत्र द्वारा जेलर को जव इस रहस्य का पता लग गया, तो उसने उक्त वन्दी को बुलाया और एकात कमरे मे ले जाकर उससे अपनी हजामत वनवाने लगा।

जव हजामत वन गई तो जेलर ने वडे ही प्रेम-पूर्वक वन्दी के कान मे कहा—"भाई, कमरा वद इसलिए है कि ऐसे अवसर पर तुम मेरे नाक-कान काटने की अपनी इच्छा को सुविधा पूर्वक पूरी कर लो। मैं कसम खाकर कहता हूँ कि इस सम्वन्ध मे किसी को भी कुछ नही वतलाऊँगा।"

जेलर की इस सज्जनता का उस कैदी पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि वह रोने लगा और उसकी आँखों से टप-टप अश्रु गिरने लगे।

जेलर ने स्नेहपूर्वक कहा— 'भाई क्या मेरी बात से तुम्हारे कोमल हृदय पर इतना गम्भीर आघात लगा है जिससे कि तुम रोने लगे ? इस कष्ट के लिये मुझे क्षमा करो।

जेलर की बात सुनकर कैदी जोर-जोर से रोने लगा और उसके पैरों पर गिर कर क्षमा माँगने लगा। जेलर के प्रेम व्यवहार से उसके विद्रोह की अग्नि बुझ चुकी थी इसलिए वह अपने अश्रु-पूर्ण नेत्रों के द्वारा हृदय की वेदना व्यक्त कर रहा था।

मनोवृत्ति का परिवर्तन ही हमारी असली विजय है।

—प्रेमचन्द

७४

अपनों से शत्रुता

देहली की प्रसिद्धि को सुन कर, मथुरा का एक कुत्ता सैर करने के लिये जब वहाँ पहुँचा, तो देहली के कुत्तो ने उसका निवास-स्थान पूछा। जब उसने अपने निवास-स्थान का नाम बतला दिया तो उससे यह भी पूछा कि—"मथुरा से देहली तक कितने महीनो मे आये हो?"

मथुरा के कुत्ते ने उत्तर दिया—"केवल सात दिन मे मथुरा से यहाँ आ पहुँचा हूँ।"

दिल्ली के कुत्ते बोले—"हम तो सुना करते थे कि मथुरा का रास्ता कई महीनो का है, फिर तुम इतनी जल्दी कैसे आ पहुँचे?"

मथुरा का कुत्ता बोला—"रास्ता तो महीनो का ही है, परन्तु अपने भाइयो की बदौलत महीनो का रास्ता एक सप्ताह मे ही तय कर लिया है।"

दिल्ली के कुत्तों ने पूछा— 'यह कैसे ?"

मथुरा का कुत्ता बोला— 'मथुरा से चलकर चौमा की सीमा में प्रवेश किया ही था कि वहाँ के जाति-भाइयों ने मेरी टाँग पकड़ कर दे मारा। ऐसी मान ममत हुई कि वहाँ से छुटकारा पाकर पूर्ण गति के साथ भागा और छाता में पहुँच गया। वहाँ भी प्रवेश करते ही भाई लोगों ने धर दबोचा। वहाँ से भी मैं उसी क्षण अपना जीवन बचाता हुआ भागा।

"मैं दौड़ा हुआ पलवल आया और सोचा कि अब तो उत्तर प्रदेश की सीमा पारकर पंजाब की सीमा में आ गया हूँ इसलिए पंजाबी भाइयों का स्वभाव तो अच्छा ही होगा और वे मेरा प्रेम-पूर्वक आदर-सत्कार करेंगे जिससे मैं कुछ समय यहाँ विश्राम करके आगे की यात्रा को सुविधा एवं सरलता के साथ कर सकूँ।

"जैसे ही मैं पलवल के निकट पहुँचा तो यहाँ के भाई-बन्धु भी हाथ धोकर पीछे पड़ गये और इतने कठोर निकले कि मुझे नगर की सीमा छोड़कर बाहर-बाहर ही रास्ता नापना पड़ा। पंजाबी भाइयों ने तो नगर तक को नहीं देखने दिया।"

'इसके पश्चात् फरीदाबाद में भी ऐसा ही स्वागत हुआ और इस प्रकार कठिन मार्ग को पार करते हुए सात दिन के चक्कर हो दिल्ली में प्रवेश कर लिया है। परन्तु यह बात भी स्पष्ट है कि नई दिल्ली के भाइयों ने भी कोई कमी नहीं रखी और राजधानी के निवासी होने के मद से वे इतने घमंडी निकले कि यहाँ आते ही मेरे ऊपर टूट पड़े। जब मैंने उनको आश्वासन दे दिया कि जल्दी ही आपकी राजधानी छोड़ कर चला जाऊँगा तभी उन्होंने

मेरा पीछा छोडा। इसी का फल है कि आप लोग मेरे दु ख-दर्द की राम कहानी पूछ रहे हो।"

"मार्ग मे सभी जगह मेरा जो स्वागत-सत्कार हुआ है, उसे मैं जीवन-भर नही भूलूँगा और अपने भाइयो द्वारा किये गए इस शिष्टाचारपूर्ण व्यवहार की सदा ही भरी सभाओ मे प्रशसा करूँगा। हमारी भी एक विचित्र जाति है, जो अपने भाइयो को तो फाड खाने को तैयार है, किन्तु दूसरो के तलुए चाटने मे भी पीछे नही रहते हैं।"

जो अपने शरणागत की रक्षा नहीं करता, उसके सभी सुकृत नष्ट हो जाते है।"

—अज्ञात

७५

नंगा क्या पहने क्या रखे?

एक जाट अपने गाँव से निकटवर्ती शहर को देखने के लिए चला। शहर में व्यक्ति साफ कपड़े पहनते हैं इसलिए उसने इधर-उधर से साबुन लेकर कपड़े साफ कर लिए थे।

वह शाम के करीब छः बजे शहर पहुँच गया और उसने उस रात को वहीं पर ठहरने का निश्चय कर लिया जिससे कि वह शहर को देखने की इच्छा को पूर्ण कर सके।

वह शहर की एक धर्मशाला में ठहर गया और शाम के सात बजे घूमने के लिए निकला। उस समय तक बिजली नहीं जली थी। कुछ ही समय के पश्चात् एकाएक बिजली जल गई, तो वह भौंचक्का-सा रह गया। वह विचार करने लगा कि न किसी ने तेल डाला न बत्ती और न माचिस ही जलाई परन्तु ये बल्ब से अपने आप ही जल उठे और फिर सब के सब एक साथ! वह असमंजस में पड़ गया। विचार करते-करते बहुत देर हो गई

परन्तु सकोचवश उसने इसका कारण किसी से नही पूछा। उसने एक लट्टू खरीदने का विचार किया जिससे कि वह अपने गांव ले जाकर विना तेल-बत्ती व माचिस के ही उस लट्टू को जलाकर देख सके और घर के तेल की बचत कर सके।

जाट बहुत खुश हुआ कि शहर मे आया हूँ, तो कोई ऐसी चीज तो ले चलूँ जिसे गाँव के भाई लोग देखते ही रह जाएँ और मेरी प्रशसा करने लगे। मेरे इस कार्य से वे सभी लोग लज्जित हो जायेंगे जो कि अनेक वार शहर मे तो आए, परन्तु ऐसी कोई नई वस्तु खरीद कर नही ले गए।

ऐसा विचार करने के पश्चात् खुशी के कारण उसके पैर जल्दी-जल्दी उठने लगे। वह सामने की एक ड्राइक्लिनर की दुकान पर जा चढा और उसकी दुकान पर लगे बिजली के बल्बो की कीमत पूछने लगा। दुकानदार ने कहा कि—"यहाँ वल्व नहीं विकते हैं, यह तो कपडे साफ करने की दुकान है।"

यह सुनकर जाट को बहुत आश्चर्य हुआ कि धोबी का कार्य करने वाला भी लट्टुओ की नुमाइश लगाये हुए है तो फिर यह कोई बहुत ही सस्ती चीज है।

उसने दुकानदार से पूछा कि—"मुझे ये लट्टू कहाँ से मिल सकेंगे ?" धोबी ने बिजली वाले की दूकान बतला दी।

जब वह बिजली वाले की दुकान पर पहुँचा तो दुकानदार ने पूछा—"चौधरी साहब बल्ब शहर के लिये ले रहे हो या गाँव के लिए ?" जाट ने कहा—"गाँव के लिए चाहिए।"

दुकानदार हँस कर बोला—"यह लट्टू तो शहर मे ही काम दे सकता है, गाँव मे नही।" और उसे सब कुछ विस्तार से समझाना पडा, तब उसने उसे खरीदने की इच्छा त्याग दी।

मागे चलकर वह एक ट्रंक (बक्स) वाले की दुकान के सामने खड़ा हो गया और रंग-बिरंगे ट्रंकों को देखने लगा। दुकानदार ने सोचा कि यह गाँव का किसान है इसलिए अवश्य ही ट्रंक खरीदेगा। उसने उसे बुलाया और ठंडा पानी पिलाया बीड़ी-सिगरेट के लिए भी पूछा।

इसके पश्चात् जाट को सभी प्रकार के ट्रंक दिखलाए और उनका साइज कीमत आदि सभी बातें विस्तार के साथ बतलायी।

समस्त दुकान को देखने के पश्चात् जब जाट चुपचाप दुकान से नीचे उतरने लगा तो दुकानदार ने अन्त में कहा—"चौधरी क्या ट्रंक नहीं लोगे ?"

जाट बोला— 'जब लत्ते-कपड़े इस ट्रंक म रख दू गा तो पहनू गा क्या तेरा सिर ?'

जाट की बात सुनकर दुकानदार चुप-चाप बैठ गया।

इस कथानक से स्पष्ट है कि शिक्षा-प्रसार की कमी से जहाँ एक ओर हमारे ग्रामीण भाई नगरों के वर्णन पर विज्ञान की मामूली बातों से प्रभावित रह जाते हैं, वहाँ दूसरी ओर उद्योग-धन्धों के विकास की कमी के कारण भी आर्थिक कठिनाइयों में भी इस बुरी तरह ग्रसित हैं कि पहनने-ओढ़ने के लिए पर्याप्त कपड़े भी उनके पास नहीं हैं। ग्रामीण जीवन की इस कठिनाई का गहन अध्ययन करने पर ही राष्ट्र-पिता पूज्य गाँधी जी ने अपने लिए अति साधारण वेश-भूषा— घुँघोटा बाँधने और चादर ओढ़ने— का निश्चय किया था। और इसी वेश-भूषा को धारण कर वे भारत की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में हुई गोलमेज कॉन्फ्रेंस

(Round Table Confrence) मे सम्मिलित होने के लिए महामना मालवीय जी और श्रीमती सरोजनी नायडू के साथ इगलैण्ड भी गए थे।

प्रसगवश यह कहना भी असगत न होगा कि भारत के ग्रामीण जीवन की कठिनाइयो को जितनी गहराई से राष्ट्र-पिता ने अध्ययन किया और अध्ययन के परिणाम स्वरूप उनके निवारण के लिए जिस तन्मयता से क्रियात्मक कदम उठाए, वैसी तन्मयता-पूर्ण क्रियाशीलता आज हमारे नेताओ मे दिखाई नही देती।

७६

ऐंठ की शान

एक घर मे सास-बहू में प्राय: झगड़ा हुआ करता था। झगड़ा करने के पश्चात् सास रूठ कर घर से बाहर बैठ जाती थी और थोड़ी-बहुत देर के पश्चात् बहू उसे खाने-पीने के लिए मनाने जाती थी। इस प्रकार सास सभी मोहल्ले वालों को यह दिखलाना चाहती थी कि इस घर में सास की बहुत इज्जत है क्योंकि लड़ाई के पश्चात् भी आदर के साथ मनाकर खाना-पीना खिलाया जाता है।

इस प्रकार के समाचार व्यवहार से बहू तंग हो चुकी थी। एक दिन सास-बहू की लड़ाई हुई तो सास अपनी आदत के अनुसार लड़ाई के पश्चात् घर के बाहर जा बैठी।

बहू का पति कार्य-वश नगर के बाहर गया हुआ था अन्य कोई व्यक्ति घर में था नहीं। बहू उस दिन चुप्पी साध गई और सास को बुलाने के लिए नही गई। सास को प्रतीक्षा करते-करते शाम हो गई और उसने सोचा कि दोपहर के खाने के लिए

वहू बुलाने नही आई तो शाम के खाने के लिये तो जरूर बुलाने आएगी।

जाडे का समय था और उसके पास कोई कपडा भी नही था। दिन के समय तो वह धूप मे बाहर बैठी रही, परन्तु शाम के समय जाडे ने उसे बाहर बैठना कठिन कर दिया। साथ ही दिन भर की भूख भी अब उसे सहन नही हो रही थी।

उसने सोचा कि वहू खाना बना रही होगी, इसलिए बनाकर ही बुलाने आएगी। जब खाना बनाने का समय निकल गया तो समझा कि खाना खाने के पश्चात् तो जरूर ही आएगी।

इस प्रकार खाना खाने का भी समय निकल गया और सोने का समय हो गया, परन्तु वहू बुलाने नही आई।

इधर-उधर के पडौस के व्यक्ति भी उससे जान-बूझकर वहाँ बैठने का कारण पूछने लगे तो वह लज्जित हो गई। इस प्रकार उसको वहाँ पर अधिक देर तक बैठना कठिन हो गया।

जब उसे वहाँ बैठना दुर्लभ हो गया तो उसने सोचा कि कोई ऐसी युक्ति करनी चाहिए जिससे बात भी रह जाए और घर के अन्दर पहुँच कर खाना-पीना खाकर विश्राम भी कर लूँ।

उसी समय बाहर से भैंस आ गई और उसके साथ ही पाडी भी थी। जब भैंस अन्दर प्रवेश कर गई और उसके पीछे पाडी भी घुसने लगी तो बुढिया ने चट से उसकी पूँछ पकड ली और बडे नखरे दिखाती हुई, पाँव पटकती हुई, मचलती हुई और यह कहती हुई—"मेरी पाडी रहने दे, मुझे आज बाहर ही रहने दे, मुझे घर मे क्यो ले जा रही है।"

७७

दया की पराकाष्ठा

हजरत अयूब मुसलमानों के एक बहुत ही माने हुए वली (सन्त) हुए हैं। वे बहुत दयालु थे और दूसरे को वे कभी भी कष्ट में नहीं देख सकते थे।

वृद्ध अवस्था में वे बीमार पड़ गए और इतने भयंकर बीमार हो गए कि उनके शरीर में घाव हो गए और उसमें कीड़े भी पड़ गए।

एक दिन उनके घाव से कीड़े निकल-निकल कर नीचे गिर रहे थे तो पास में खड़े व्यक्ति ने घाव से सभी कीड़ों को निकालने का विचार किया परन्तु हजरत अयूब ने ऐसा करने से मना कर दिया। इसके अतिरिक्त जितने कीड़े नीचे पड़े हुए थे वे सब उठा कर अपने घाव के अन्दर ही डाल लिए।

जब कुछ व्यक्तियो ने इसका कारण पूछा तो बोले—"इन कीडो की खुराक मेरे शरीर मे ही है, इससे बाहर जाते ही ये मर जाएँगे। जिस किसी निर्जीव के अन्दर हम प्राण नही डाल सकते है, तो उसके प्राण लेने का हमे क्या अधिकार है।" उनके इन शब्दो को सुनकर सभी व्यक्ति आश्चर्य मे पड गए।

दया कौन पर कीजिए, का पर निर्दय होय।
साँई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय॥

—कबीर

७८

पूत के पैर पालने में

पानीपत के ऐतिहासिक रण-क्षेत्र में हेमू और मुगल सम्राट अकबर के बीच भयंकर युद्ध हुआ। घमासान लड़ाई के पश्चात् हेमू पराजित हुआ और अकबर के सेनापति मिर्जा बैरम खाँ ने उसको गिरफ्तार करके अकबर के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

अकबर उस समय १३ वर्ष की आयु के आस-पास था। सेनापति ने परम्परानुसार हेमू का वध करने का प्रस्ताव रखा।

अकबर ने कहा— "निःसहाय और बन्दी मनुष्य पर हाथ उठाना महान् पाप है।" इसलिए उसके वध का विचार त्याग दिया और उसे सम्मान सहित रखा। कुछ समय के पश्चात् उसको छोड़ दिया गया।

छोटी उम्र मे ही अकबर की इस दूरदर्शिता एव विशाल हृदयता की जन-समुदाय ने बहुत ही प्रशसा की और यही कारण है कि इस प्रकार के गुणो के परिणाम स्वरूप वह छोटी आयु मे भी कांटो का ताज पहन कर विशाल साम्राज्य स्थापित करने मे सफल हो गया।

शत्रुओं को क्षमा करना वदले का सवसे अच्छा साधन है।

—अज्ञात

७९

पुरुषार्थ

एक बार किसी व्यक्ति ने अपनी निर्धनता का विवरण देते हुए हजरत मुहम्मद से आर्थिक सहायता की याचना की। हजरत साहब कुछ देर तक तो चुप रहे और फिर बोले—

"तुम्हारे पास क्या-क्या चीजें है, उन सब को यहाँ लाओ।

वह बोला—"हुजूर एक टाट का टुकड़ा है जिसे मैं आधे को बिछा लेता हूँ और आधे को ओढ़ने के काम में लेता हूँ। इसके अतिरिक्त एक प्याला पानी पीने के लिए मेरे पास है। बस यही सम्पत्ति मेरे पास है।

हजरत साहब ने उस बोरी के टुकड़े और प्याले को मँगवाया। इसके पश्चात् उसे,एक गरीब को बेच दिया। जिससे दो रुपया प्राप्त हुआ। उन्होंने दो रुपया उसे देते हुए कहा कि एक रुपये अन्न खरीदने के लिए और आठ आने कुल्हाड़ी आने के लिए है।

जब वह व्यक्ति कुल्हाडी लेकर आया, तो हजरत मुहम्मद ने उसे लकडी काट-काट कर बेचने की राय दी। साथ ही यह भी कह दिया कि अब १५ दिन पश्चात् मेरे पास आना।

जब वह व्यक्ति १५ दिन के पश्चात् उनके पास पहुँचा तो बीस रुपए उसके पास थे, जो कि उसने प्रतिदिन के व्यय के अतिरिक्त बचाए थे। उसने आते ही बीस रुपए हजरत साहब के पैरो पर रख दिए और हाथ जोडकर खडा हो गया।

हजरत साहब भी परिश्रम से लाए हुए रुपयो को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और वह व्यक्ति भी अपनी सफलता पर प्रसन्नता प्रकट कर रहा था।

हजरत साहब ने कहा "बस, अब जीवन-भर परिश्रम और पुरुषार्थ की कमाई को ही खाना, इससे तुम्हारे जीवन मे एक नया मोड आएगा और तुम एक न एक दिन सम्पन्न व्यक्ति बन जाओगे, जिससे कोई दूसरा व्यक्ति ही तुम्हारे सामने हाथ फलाने लगे। लेकिन यह सब कुछ पुरुषार्थ से ही सम्भव है, इसलिए इसको मत भूलना।

८०

संकट में धैर्य

एक पहाड़ी पर बैठा हुआ नेपोलियन युद्ध का संचालन कर रहा था। उसके सिपाहियों के पैर उखड़ चुके थे क्योंकि शत्रु की सेना संगठित बहुत ही बहादुर एवं विशाल थी। इसीलिए नेपोलियन की सेना को उसके सम्मुख खड़े रहना कठिन पड़ गया। ऐसी अवस्था देखकर सिपाही सोचने लगे कि यदि नेपोलियन पीछे हटने या युद्ध बन्द करने का तनिक भी संकेत दे दे तो तुरन्त वापिस लौट चलें और यह अच्छा भी है क्योंकि आज के युद्ध में विजय प्राप्त करना असम्भव है।

इसी सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए उपसेनापति नेपोलियन के पास गया और उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए आठ-दस प्रकार की अच्छी से अच्छी सिगरेट केस में रखकर उनके सामने प्रस्तुत कर दी। नेपोलियन ने युद्ध-स्थल की ओर

दृष्टि किए हुए ही सर्व श्रेष्ठ सिगरेट उठा ली और उपसेनापति की ओर देखा तक नही ।

उपसेनापति उत्साह पूर्वक वापिस लौट गया । उसने सोचा कि जो व्यक्ति ऐसे सकट मे भी इतना धैर्य रखता है, और घटिया और बढिया के विवेक को नही भूला है, तो ऐसे व्यक्ति की अवश्य ही विजय होगी ।

नेपोलियन के दृढ निश्चय से उपसेनापति को नई शक्ति मिली और वह वापिस लौटकर सेना के साथ युद्ध मे लग गया और अन्त मे विजय श्री नेपोलियन को ही प्राप्त हुई ।

शत्रु का लोहा गरम भले ही हो जाए, पर हथोड़ा तो ठण्डा रहकर ही काम दे सकता है ।

—सरदार पटेल

८१

कर्त्तव्य-पालन

एक बार अमेरिका में कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति लोकहित के कार्य के सम्बन्ध में विचार विनिमय करने के लिए एकत्रित हुए। उस दिन आँधी तूफान एवं वर्षा ने ऐसा भयंकर दृश्य उपस्थित कर दिया कि सभी व्यक्तियों को प्रलय की सम्भावना दिखलाई देने लगी। सभी व्यक्तियों को विश्वास हो गया कि प्राण जीवन की रक्षा करना बहुत ही कठिन है और सभी मृत्यु के मुँह में चले जाएँगे।

वहाँ उपस्थित कुछ व्यक्तियों ने प्रस्ताव रखा कि हमें सभा की कार्यवाही को स्थगित करके ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए, जिससे यह आया हुआ भयंकर संकट टल जाए और हम सब सुरक्षित रह सकें।

इस बात को सुनकर सभा के अध्यक्ष ने कहा—"यहाँ हम जिस पवित्र एवं उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्य के लिए यहाँ एकत्रित

हुए हैं, वही हमे करना चाहिए। यदि प्रलय आ भी गई तो हमे कर्त्तव्य का पालन करते हुए मर जाना चाहिए, लेकिन कर्त्तव्य को त्याग कर अकर्मण्य अवस्था मे बैठकर व्यर्थ चिन्ता करने से कोई लाभ नही होगा।

"इस सकट के समय मे ईश्वर के चिन्तन को छोडकर यदि मानव-रक्षा की चिन्ता की जाए, तो अति उत्तम है और व्यावहारिक भी। अन्यथा जन-साधारण का विश्वास हमारे ऊपर से उठ जाएगा—हम अपने उचित कर्त्तव्य से भी विमुख हो जाएँगे और अन्त मे हमे शुभ फल भी प्राप्त न हो सकेगा, जिसके लिए हम यहाँ एकत्रित हुए हैं।"

"वस, अब तो केवल एक ही उचित मार्ग है कि हम सत्य-निष्ठा एवं आत्म-विश्वास के साथ इस पवित्र कर्त्तव्य मे लगे रहे।"

८२

मोह-जाल

विश्व-विजेता बनने का स्वप्न देखने वाला सिकन्दर एक बार बीमार पड़ गया। उसकी बीमारी इतनी भयंकर हो गई कि उसका अन्तिम समय आ गया। जब उसकी माता ने देखा कि अब सिकन्दर का जीवित रहना असम्भव है तो वह फूट-फूटकर रोने लगी और रोती हुई उससे कहने लगी—"मेरे लाल अब मैं तुझे कहाँ पर पा सकूँगी ?"

सिकन्दर ने अपनी बूढ़ी माँ को सांत्वना देते हुए कहा—"मामा (माँ) मृत्यु के सतरहवें दिन मेरी कब्र पर आना वहाँ पर मैं तुमको अवश्य मिलूंगा।"

उसकी माता मृत्यु के पश्चात् सतरह दिन तक कलेजा थाम कर बैठी रही और सतरहवें दिन कब्र पर जा पहुँची। उसने सिकन्दर को आवाज लगाई लेकिन प्रत्युत्तर में कोई आवाज नहीं आई। वह जगह निर्जन और भयानक थी।

कुछ समय के पश्चात् उसे पैरो की ग्राहट सुनाई पडी तो उसने तुरन्त कहा—"कौन, सिकन्दर ?"

ग्रावाज ग्राई—"कौन से सिकन्दर की खोज कर रही हो, वुढिया मां ?"

माता ने कहा—"दुनिया के शहँशाह ग्रौर ग्रपने वेटे सिकन्दर को खोज रही हूँ। उसके ग्रतिरिक्त इस दुनिया मे दूसरा सिकन्दर है कौन ?"

सहसा हँसती हई ग्रौर पथरीले मार्ग को तय करती हुई, पत्थरो की चट्टानो को तोडती हुई एव पर्वतो से टकराती हुई कोई शक्ति उस वुढिया के पास ग्राई ग्रौर वोली—"भोली मां! कैसा सिकन्दर, किसका सिकन्दर, कौन-सा सिकन्दर, इस पृथ्वी के कण-कण मे हजारो सिकन्दर चिर निद्रा मे सोए पडे हैं।"

इन शब्दो से वुढिया की मोह-निद्रा भग हो गई ग्रौर वह चुपचाप वापिस घर लौट गई।

८३

जरा और मरण को जीतिए

एक राजा ग्रीष्म-ऋतु की प्रचंड दोपहरी में गुरुदेव के दर्शनार्थ आया। गुरुदेव ने राजा से पूछा – 'राजन्! आज इस भयंकर ग्रीष्म के समय किस ओर निकले ?

'राजा बोला—"मेरा राज्य विशाल होता जा रहा है और आज भी उसकी सीमा में कुछ वृद्धि हुई है। जिस नई भूमि पर अधिकार हुआ है उसका भी चिरकाल तक उपयोग कर सकूं। बस इसका ही प्रबन्ध करने के लिए आज इस समय बाहर निकला हूँ। साथ ही शत्रु भी उस भूमि पर फिर से अधिकार करने के लिये आक्रमण न कर दे इसके लिए वहाँ सुरक्षा एवं सेना का भी समुचित प्रबन्ध करना है।

गुरुदेव बोले—"राजन्! आप अपने शत्रु से रक्षा करने के लिए सब-कुछ प्रबन्ध करते हैं, यह ठीक है परन्तु यदि कोई

व्यक्ति आपके पास दौडता हुआ आए और यह समाचार दे कि चारो ओर से प्रलय होती आ रही है—उसमे सभी प्राणियो का सहार भी हो रहा है, इसलिए इस समय आप अपना कर्त्तव्य पूरा कीजिए, तो उस अवसर पर आप क्या करेंगे ?"

राजा बोला "भगवन् ! ऐसे भयकर समय मे मेरी तो क्या, सम्पूर्ण विश्व की सेना भी उस सकट को नही टाल सकती है। बस, उस समय तो मेरा धर्म ही सहायक होगा।"

बुद्धदेव बोले—"बस, जरा और मरण उस प्रलय से भी अधिक भयंकर है, क्योकि सेना, हाथी, घोडे एव अन्य सभी युद्ध के साधन इसके सम्मुख निरर्थक हो जाते हैं ये साधन कभी भी मृत्यु पर विजय प्राप्त नही कर सकते है।"

"इसलिए जरा-मरण के झझट से रक्षा करनी है, तो धर्म-रूप भगवान् का ही सहारा लेना पड़ेगा, और यदि सावधानी पूर्वक सद्धर्म का आचरण करते रहे, तो जरा-मरण के भयकर आवागमन से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नही है, जिस पर चलकर इससे छुटकारा पाया जा सके।"

८४

बात की बात में

कृष्णचन्द्र नामक एक जमींदार हुआ है, जो कि किसानों एवं मजदूरों पर बहुत-ही अत्याचार किया करता था।

एक बार किसी किसान ने ठीक समय पर लगान नहीं दिया। अतः जमींदार सहसा बिगड़ गया और अपने दल-बल सहित गरीब किसान के घर पर पहुँच गया।

जमींदार ने किसान का सब कुछ सामान घर से निकलवा लिया और उसे लदवा कर चल दिया। यहाँ तक कि उस गरीब किसान के बच्चों के लिये एक-दो दिन के निर्वाह के लिये अन्न तक नहीं छोड़ा। किसान व उसके बच्चे जमींदार के पैरों पर पड़ गए, परन्तु वहाँ पत्थर हृदय के पिघलने का क्या काम था!

जमींदार किसान के सामान को लेकर घर पहुँचा तो उस दिन उसे पहुँचने में विलम्ब हो गया।

जमींदार की लडकी ने पूछा—"पिता जी, आज कैसे देर हो गई है ? रात्रि के कारण इतना अँधकार हो चुका है कि प्रकाश का नाम तक भी नही, फिर भी आप न जाने इतनी देर तक कहाँ रह गए ? लीजिए अभी मैं दीपक जलाती हूँ।"

कन्या के ये शब्द—"अँधकार हो गया प्रकाश का नाम नही"—जमींदार के मन-मदिर मे गूजने लगे और इसकी आवाज हृदय तक पहुँचने मे भी देर न लगी।

इस प्रकार लडकी के शब्द उसके हृदय को छू गए और वह विचार करने लगा कि मेरा बालकपन तो बीत गया और युवावस्था भी कुछ ही दिन की महमान है, लेकिन अभी तक हृदय मे प्रकाश नही किया। मुझे भव-सागर को पार करना है, लेकिन अभी तक अँधकार मे ही पडा रहा और इस दुर्गम मार्ग को पार करने की तनिक भी चिन्ता नही की।

जमींदार के मन मे विचारो की ऐसी क्रान्ति आई कि वह अपनी सब धन-सम्पति एव परिवार को भूल गया और बात की बात मे ही गृहस्थाश्रम का त्याग कर ज्ञान का दिव्य प्रकाश प्राप्त करने मे लीन हो गया।

८५

वृद्ध माता का स्वदेश प्रेम

एक बार कोरिया के युद्ध में सैनिकों की बहुत आवश्यकता पड़ी। जापान के प्रत्येक स्त्री-पुरुष की भुजाएँ रण-क्षेत्र में जाने के लिए फड़कने लगीं। उसी संकट के समय में एक मजदूर से भी नहीं रहा गया और वह भी सेना के साथ युद्ध-स्थल पर जाने के लिए तैयार हो गया।

वह युवक निर्धन था और अपने वृद्ध माता-पिता का अकेला ही पुत्र था। चूँकि जापान में ऐसा नियम था कि जो युवक अपने अशक्त माता-पिता की सेवा का अकेला ही सहारा होता था उसको युद्ध में नहीं भेजा जाता था।

भर्ती के समय जब इस युवक मजदूर के बारे में पूछ-ताछ हुई, तो वह भी अपनी वृद्ध माता का अकेला ही पुत्र था इसलिए उसे सेना में प्रवेश की अनुमति नहीं मिल सकी।

माता ने ही प्रसन्नता पूर्वक अपने पुत्र को युद्ध में जाने के लिए अनुमति प्रदान की थी लेकिन जब उसे यह पता लगा कि

केवल मेरे ही कारण उसके देश-सेवा हेतु जाने मे अटचन पैदा हो रही है, तो उसको बहुत ही दु ख हुआ । पुत्र की तीव्र इच्छा की पूर्ति हेतु ही उसने सहर्ष स्वीकृत दे दी थी, लेकिन अब वह बिल्कुल ही नही चाहती थी कि मेरी स्वीकृति के पश्चात् मेरे पुत्र के वहाँ जाने म कोई अड़चन आए ।

माता ने कहा—"बेटा, मेरी अन्तिम इच्छा थी कि तुम देश की रक्षा के लिए जाओ और जब विजय प्राप्त करके घर वापिस आओ तो मैं तुम्हारा अभिनन्दन करू ँ। लेकिन ऐसी स्थिति मे मेरी इच्छा पूर्ण होती दिखलाई नही देती है, क्योकि सरकार तुमको सेना मे प्रवेश की अनुमति नही दे रही है – यह बडे दुख की बात है ।"

माता के हृदय मे स्वदेश-प्रेम की तरग दौडने लगी और उसने निश्चय कर लिया कि अब मैं अपने पुत्र की देश-सेवा मे बाधक नही बनना चाहती हूँ । यह विचार करके वह कमरे के अन्दर गई और "मातृ-भूमि की जय" उच्चारण करके अपने पेट मे छुरा भोंक लिया और स्वदेश के लिये अपने प्राण त्याग कर सदा के लिए मातृ-भूमि की गोद मे लेटकर चिरनिद्रा मे लीन हो गई ।

८६

विद्या ददाति विनय

"यदि विनय का प्रवेश किसी के जीवन में हो गया है तो समझ लीजिए कि उसने विद्या पाई है।"

"संसार में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जिन्होंने विद्या के नाम पर दो-चार अक्षर सीख लिए। परन्तु उनको उसी विद्या का अहंकार सवार रहता है और ऐसे व्यक्ति समझ बैठते हैं कि बस अब तो हमारे बराबर पढ़ा-लिखा विद्वान् संसार के अन्दर मिलना कठिन है। परन्तु उनको यह नहीं पता कि अभी तो विद्यारम्भ भी नहीं हुई, उससे पहले ही कैसे विद्वान् बन गए।'

यूरोप में न्यूटन नामक एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुए हैं। उन्होंने उच्च कोटि का अध्ययन किया था और अनेक विषयों में प्रवीणता भी प्राप्त किया था। बड़े-बड़े उच्च कोटि के विद्वान् भी उनको अपना गुरु मानते थे।

जब वह प्रसिद्ध विद्वान् मृत्यु के निकट था तो उसने अपने साथियों से कहा—'मित्रो मेरी आयु तो लम्बी रही लेकिन

विद्याध्ययन के लिये छोटी रही, क्योंकि ज्ञान-समुद्र के किनारे पर बैठकर अभी तक तो बच्चो की तरह ककर-पत्थर ही एकत्रित किए है। ज्ञान के विशाल समुद्र को मथन करने का काम तो शेष ही रह गया। इसलिए विद्यार्थी जीवन को अधूरा ही छोड कर जा रहा हूँ।"

मृत्यु के समय भी न्यूटन की अध्ययन की तीव्रतम इच्छा को देखकर सभी मित्रो को आश्चर्य हुआ और जो व्यक्ति थोडे-से ही अध्ययन से अपने को महान् पडित समझ बैठे थे, उनका अहकार दूर हो गया।

विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है।

—वेदव्यास

८७

जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन

एक बार कोई प्रसिद्ध राज-गुरु राज्य-दरबार में ठहरे तो उसके लिए राज्य की ओर से बहुत ही उत्तम प्रबन्ध किया गया। यहाँ तक कि रत्न-जड़ित आसन उनके लिए बिछाया गया।

रात्रि में जब विश्राम के लिए उन्होंने उस रत्न-जड़ित बहुमूल्य आसन पर पैर रखा तभी से उसके मन में यह भाव आ गया कि इस आसन को यदि बाजार में ले जाकर बेच दिया जाए, तो बहुत अधिक कीमत प्राप्त हो जाएगी और मैं धनवान् बन जाऊँगा। आसन चुराने की इच्छा तो तीव्रतम हो चली थी परन्तु उसको दबाए रखा और इसी विचार के कारण उनको रात भर निद्रा भी नहीं आई।

प्रातःकाल होते ही राज-गुरु बैठ गए और अपने ध्यान में लीन हो गए। जब आसन से अलग होते ही उनके मन में

आध्यात्मिक विचार आ गए और वे रात्रि को आए हुए कुविचारो पर पश्चात्ताप करने लगे ।

सुवह के समय राजा उनके दर्शन करने के लिये आया, तो उन्होंने कहा—"राजन् ! रात्रि मे हमारे मन मे जो विचार आये है, ऐसे विचार जीवन मे कभी नही आये, इसलिए प्रतीत होता है कि रात्रि के भोजन मे चोरी का अन्न खाया है।"

भडारी को वुलाया गया और इस सम्वन्ध मे विस्तृत जांच-पडताल की गई, तो पता लगा कि किसी व्यक्ति को चोरी के वहाने पकडा गया था, और जिसको पकडा गया, वह चोर प्रमाणित न हो सका परन्तु फिर भी उसका माल नही लौटाया गया। रात्रि का भोजन उसी के सामान से वनाया गया था।

राजा ने सव जानकारी करने के पश्चात् वह सभी सामान उस व्यक्ति को लौटा दिया और उसी समय गुरुदेव से क्षमा मांगी। राजा ने उसके सम्मुख प्रतिज्ञा भी की कि भविष्य मे वह इस प्रकार अन्याय न किसी के धन-माल पर अनुचित अधिकार नहीं करेगा।

८८

प्राणि-सेवा ही धर्म

एक बार सुप्रसिद्ध लेखक सखाराम अपने दो मित्रों सहित स्वामी विवेकानन्द के पास गए। स्वामीजी को पता लग गया कि जो व्यक्ति यहाँ मिलने के लिए आए हैं उनमें से एक पंजाबी भाई भी है।

उस समय पंजाब प्रान्त में दुष्काल चल रहा था, इसलिए स्वामी जी ने आगन्तुकों के साथ पंजाब की दशा एवं उसके निवारण के सम्बन्ध में ही वार्तालाप किया और उसके पश्चात् सामाजिक एवं नैतिक उन्नति के सम्बन्ध में बातचीत की।

जब वे सज्जन स्वामी जी से विदा लेने लगे तो बोले—"स्वामी जी हम तो धर्म के विषय में ही कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों के विषय में जानकारी करने हेतु आए थे किन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि साधारण विषय के सम्बन्ध में ही विचार-विमर्श करते हुए समय निकल गया।

स्वामी जी उनकी बात को सुनकर शान्त-भाव से बोले—"भाइयो, जब तक अपने देश का एक कुत्ता तक भी भूखा रहेगा, तब तक उसको खिलाने एव सँभालने का विचार रखना ही मेरा प्रथम धर्म है। इसके अतिरिक्त या तो विधर्म है या सब कुछ झूठ प्रतीत होता है।"

स्वामी जी के मार्मिक वचन सुनकर तीनो व्यक्ति स्तब्ध रह गए और धर्म-चर्चा को छोड भाइयो की प्राण-रक्षा की चिन्ता करते हुए वहाँ से चल दिए।

सेवा मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है।

—प्रेमचन्द

८९

ठगों का प्रचार

नाबेर नामक व्यक्ति के पास एक बहुत ही सुन्दर एवं तेज रफ्तार से दौड़ने वाला घोड़ा था। घोड़ा इतनी तेज गति से दौड़ता था कि आस-पास में उसकी समानता करने वाला दूसरा घोड़ा नहीं था।

दाहेर नामक व्यक्ति ने जब घोड़े की इतनी प्रशंसा सुनी तो उसने उसे खरीदने का विचार कर लिया और वह घोड़े को खरीदने के लिये नाबेर के पास गया।

नाबेर ने घोड़ा बेचने से मना कर दिया। वह व्यक्ति मन-चाही कीमत भी देने के लिए तैयार हो गया परन्तु फिर भी वह घोड़ा बेचने को मना ही करता रहा। जब वह व्यक्ति घोड़ा प्राप्त करने में सफल न हो सका तो यह कहता हुआ चला गया—"चाहे जो कुछ भी हो घोड़ा अवश्य ही प्राप्त करके रहूँगा।"

दूसरे दिन दाहेर ने अपने कपड़े बदल लिए और फटे कपड़े पहिन लिए। इसके अतिरिक्त उसने अपने मुँह पर काला रंग लगा लिया जिससे कि घोड़े का मालिक उसे पहचान न सके। इस

प्रकार वेश बदल कर लँगडाता हुआ मार्ग के किनारे बैठकर जोर-जोर से खाँसने लगा। उसी समय नावेर अपने घोडे पर बैठकर उस मार्ग से आ गया।

नावेर दयालु प्रकृति का व्यक्ति था, इसलिए उस व्यक्ति को दरिद्र एव लगडाता हुआ देखकर उसे दया आ गई। उसने छद्म वेशधारी लगडे भिखारी को घोडे पर बैठा दिया जिससे कि वह उसे निकट के गाँव तक पहुँचा सके। वह स्वय पैदल चलने लगा।

दाहिर ने घोडे पर बैठते ही एड लगा दी और अपने मुख की स्याही पोछ कर बोला—"देख, तुमने सीधे रूप मे घोडा नही दिया है, अब मैं बिना मूल्य दिए हुए ही इसे ले जा रहा हूँ।"

नावेर बोला—"यदि तुम इस घोडे को लेजा ही रहे हो, तो इसकी देख-रेख ठीक प्रकार रखना और दूसरी बात यह ध्यान मे रखना कि इस सम्बन्ध मे प्रचार मत करना कि घोडा ठगी से प्राप्त किया है। क्योकि यदि आपने ऐसा प्रचार किया तो आज के पश्चात् कोई भी गरीब भिखारियो का विश्वास न करेगा और न कोई उनकी सहायता ही करेगा—इससे अकारण ही उन दीन-दुखियो को कष्ट होगा, जो कि भिक्षा माँग कर ही अपना पेट भरते है।"

नावेर की बात सुनकर उस व्यक्ति को कुछ ध्यान आ गया और वह लज्जित-सा हो गया। वह उसी क्षण घोडे से नीचे उतर गया और घोडा उसी के मालिक को वापिस कर दिया। इसके पश्चात् वह नावेर का मित्र बन गया।

९०

अफलातून का उपदेश

जब अफलातून बीमार पड़ गया और उसे अपने जीवन की आशा न रही तो उसने अपने पुत्रों को उपदेश देते हुए चार बातें बतलाईं जिनमें दो भूल जाने के सम्बन्ध में और दो स्मरण रखने योग्य थीं।

उन्होंने कहा—

१—दूसरों ने तुम्हारे विरुद्ध जो भी कुछ किया है उसको भूल जाना।

२—तुमने किसी के लिए यदि कोई उपकार किया हो तो वह भी भूल जाना क्योंकि याद रखने से व्यर्थ का अहंकार ही बढ़ेगा।

३—सदा याद रखो कि कोई भी प्राणी तुम्हारा अच्छा या बुरा नहीं कर सकता है।

४—सदा स्मरण रखना कि एक दिन अवश्य ही मरना है।

९१

चोर पर भी दया

गजाधर भट्ट अपने शिष्यो तथा अन्य सेवको के लिए अपने आश्रम मे खाने-पीने का पूर्ण प्रबन्ध रखते थे। अन्य अनेको भिखारी भी वहाँ पर भोजन करते थे।

एक बार रात्रि को कोई चोर उनके आश्रम में घुस गया और उसने वहाँ का बहुत-सा सामान बांध लिया। चोर ने इतना सामान बांध लिया कि उससे उठा भी नही। चोर माल को उठाने का प्रयत्न कर ही रहा था, कि गजाधर भट्ट वहाँ आ गए और चुपचाप गठरी उठाने मे चोर की सहायता करने लगे।

गजाधर भट्ट को देखकर चोर डर गया और सामान छोडकर भागने लगा, परन्तु वे बोले—"भाई, डरता क्यो है? यहां तो राम का खेत है और राम की चिडियां हैं। तुम जितना चाहो ले जाओ, क्योकि यहां तो जो कुछ भी है वह सभी व्यक्तियो के लिये है। इसलिए यहां रहेगा तब भी इसे व्यक्ति ही खाएंगे

और तुम्हारे घर जाएगा तब भी खाने के ही काम में आएगा। यहाँ तो ईश्वर की कृपा है इसलिए ऐसा सामान दूसरी जगह न मिल सकेगा। अब तुम इसे शीघ्र ले जाओ।

चोर ने इच्छानुसार सामान तो बाँध ही लिया था परन्तु गजाधर भट्ट की बात सुनकर उसका हृदय परिवर्तित हो गया और उसने सब सामान गजाधर के चरणों पर रख दिया और स्वयं क्षमा माँगने लगा। उसने प्रतिज्ञा भी की कि भविष्य में वह ऐसा दुष्कर्म कभी नहीं करेगा।

न्याय भी और दया भी

मिस्टर एगडिव बगाल प्रान्त के वीरभूमि जिले के न्यायाधीश थे। न्याय-प्रियता एव निष्पक्षता के लिए वे बहुत ही प्रसिद्ध थे।

एक वार उन्होंने किसी व्यक्ति को भयकर अपराध के फल-स्वरूप मृत्यु-दण्ड दिया। वह व्यक्ति बहुत ही गरीब था और परिवार के पालन-पोषण का भार उस अकेले के ऊपर ही था। परिवार को उसके अतिरिक्त अन्य कोई सहारा न था।

जब उस व्यक्ति को फांसी दे दी गई और न्यायाधीश को पता लगा कि वास्तव मे वह एक बहुत ही निर्धन व्यक्ति था और अपने परिवार का अकेला ही सहारा था, तो उनके हृदय मे दया का सचार हुआ और वे उसी समय उसके घर गए।

मि० एगडिव ने उसके परिवार के साथ सवेदना प्रकट की और निरतर तीन वर्ष तक पच्चीस रुपए प्रतिमास सहायतार्थ देते रहे।

राज्य-नियम के अनुसार हाथ जोडकर महाराजा के सम्मुख खडे हो गए।

राजा उनकी ओर सकेत करता हुआ बोला—"देखो, यह ससारचन्द्र जो कि आज मेरे राज्य मे 'राव' से भी उच्च पद पर है, एक दिन मेरा अध्यापक था, और मेरी बहुत ही पिटाई किया करता था, परन्तु आज मेरे सामने हाथ जोडकर खडा हुआ है। यदि मैं चाहूँ तो अभी इससे पुराना बदला चुका सकता हूँ।"

राजा की बात सुनकर ससारचन्द्र हँसकर बोले - "महाराज! यदि मुझे यह पता होता कि आप राजा बनेंगे, तो आपकी खूब पिटाई करता और अधिक परिश्रम से आपको पढाता।"

महाराजा समझ गए कि यदि ससारचन्द्र के स्थान पर दूसरा व्यक्ति होता, तो मेरे वर्तमान वैभव के कारण खुशामद करता हुआ यह कहता कि यदि मुझे पता होता कि आप राजा बनने वाले है, तो कभी भी आपको नही मारता। परन्तु ससारचन्द्र ने सभी के सम्मुख स्पष्ट एव सत्य उत्तर दे दिया। बस, यही उसकी उन्नति का कारण है और इसीलिए उसने राजाओ के बीच मे इतनी कीर्ति पाई है।

१४

दान-दाता आसफउद्दौला

लखनऊ का नवाब आसफ-उद्दौला पुण्य-दान के लिये बहुत ही प्रसिद्ध था। जब भी और जहाँ भी वह किसी गरीब को देखता था तो कुछ-न-कुछ यथा-शक्ति उसे दे ही देता था।

एक दिन कोई फकीर राज-मार्ग पर यह कहता हुआ जा रहा था— जिसको न दे मौला उसको दे आसफ-उद्दौला। नवाब ने फकीर के इस वाक्य को सुन लिया और उससे बोले— कल महल में अवश्य आना।

फकीर नियत समय पर महल में पहुँच गया। नवाब ने उसे एक तरबूज दिया। तरबूज उसने ले तो लिया परन्तु उसके मन में इस बात का बहुत दुख हुआ कि सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हो जाने पर तो महल में आने का सौभाग्य मिला और फिर भी तरबूज के अतिरिक्त कुछ बहुमूल्य वस्तु की प्राप्ति नहीं हुई।

घर पहुँचते ही फकीर ने उदास होकर उस तरबूज को दो आने मे बेच दिया। जिस व्यक्ति ने तरबूज खरीदा था वह उसे घर ले गया और जब खाने के लिये उसे काटने लगा तो उसमे से बहुमूल्य हीरे-जवाहिरात निकले।

कुछ दिनो के पश्चात् फकीर से नवाब की फिर भेट हुई और उन्होने फकीर से पूछा "भाई, तरबूज कैसा निकला ?"

फकीर बोला—"हजूर, मैंने तरबूज नही खाया, उसे तो मैंने घर पहुँचते ही दो आने मे बेच दिया था।" जब नवाब ने कहा कि उसमे तो बहुत से हीरे-जवाहिरात भरे हुए थे, तो फकीर ने बहुत लम्बा साँस लिया और पश्चाताप करने लगा।

तब नवाब ने कहा—"आज के पश्चात् केवल यही कहना, "जिसको न दे मौला, उसको न दे सके आसफ-उद्दौला।"

वास्तव मे कर्म-हीनता के कारण ही फकीर नवाब के बहुमूल्य उपहार का लाभ न उठा सका। कर्म-हीनता के फल के सम्बन्ध मे एक कहावत प्रसिद्ध है—

सकल पदारथ हैं जग माँहीं,
कर्म-हीन नर पावत नाहीं।

१५

मृत्यु से भी क्या डरना

जूलियस सीजर के विरुद्ध अनेक व्यक्ति षड्यन्त्र रच रहे थे। ऐसी अवस्था में उसके जीवन को अत्यन्त कठिनाइयों एवं विघ्न-बाधाओं ने घेर रखा था। उसके विरोधी आए दिन पग-पग पर उसके विरुद्ध कुछ-न-कुछ करते ही रहते थे।

जब सीजर के घनिष्ट मित्रों को इस सम्बन्ध में पता लगा तो उन्होंने उसे हर समय अंग-रक्षक रखने और पूर्णतया सावधान रहने का परामर्श दिया।

मित्रों की बात सुनकर सीजर बोला—"जो व्यक्ति मृत्यु के भय से डरता है उसे हर समय मृत्यु की वेदना सताती रहती है। और न जाने उसके जीवन में कितने ऐसे अवसर आते हैं, जब कि वह मृत्यु के भय से अपने कर्तव्य से भी पीछे हटकर जीवन-रक्षा की चिन्ता में ही पड़ा रहता है। इसलिए आपकी यह राय मैं मानने को तैयार नहीं हूँ।"

सीजर ने आगे कहा "मित्रो, मृत्यु से पूर्व ही व्यर्थ की चिन्ता करके क्यो निराशापूर्ण जीवन व्यतीत करूँ? सस्कार वश जब मृत्यु का आना निश्चित ही है, तब केवल एक बार ही उसे सहन कर लिया जाएगा। इसलिये मृत्यु के भय से क्यो पहले से ही व्यर्थ मे जीवन को चिन्ताग्रस्त करूँ। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि समय से पूर्व मारने वाला ससार मे कोई नही है और समय के पश्चात् कोई जीवन को बचा भी नही सकता है, इसलिए इस सम्बन्ध म चिन्ता करना या अन्य उपाय सोचना व्यर्थ है।"

जुलियस सीजर के साहस एव दृढ विचारो को सुनकर उसके मित्र चुपचाप अपने घरो को चले गये।

मृत्यु से नया जीवन मिलता है। जो व्यक्ति और राष्ट्र मरना नहीं जानते, वे जीना भी नहीं जानते। केवल वहीं जहाँ कब्र है, पुनरुत्थान होता है।

—जवाहरलाल नेहरू

९६

दूसरों की चर्चा ही निकम्मापन

सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता प्लेटो जब सिराक्यूज गया तो वहाँ के स्वेच्छाचारी राजा ने उसका बहुत ही आदर-सम्मान किया। राजा ने उसके सम्मान में कोई कमी नहीं रखी और जितना भी उच्च स्तर का राजकीय सम्मान कर सकता था वह किया गया। राजा को पूर्ण विश्वास हो गया कि स्वदेश लौटकर प्लेटो मेरी बहुत प्रशंसा करेगा।

जब प्लेटो विदा होने लगा तो राजा ने उससे आदर सहित पूछा—"क्या आप ग्रीस की अकादेमी की सभा में मेरे दोषों की चर्चा करेंगे ?"

प्लेटो चापलूस प्रकृति का व्यक्ति नहीं था इसलिये वह सब समझ गया कि राजा मुझे क्यों ऐसा कह रहा है। राजा अपने सम्मान एवं सज्जनता की अमर्त्य प्रशंसा मेरे द्वारा कराना चाहता है।

प्लेटो ने कहा—"राजन् ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि अकेडेमी की सभा मे मुझे इतना व्यस्त रहना पडेगा कि आपकी चर्चा करने का अवसर ही नही मिलेगा ।"

प्लेटो की बात सुनकर राजा चुप रह गया और उसे यह समझते देर न लगी कि इधर-उधर की व्यर्थ की चर्चा करना बेकार व निकम्मे व्यक्तियो का ही काम है, सच्चे व कर्त्तव्य-निष्ठ व्यक्तियो का नही ।

कीर्ति का नशा शराब के नशे से भी तेज है। शराब का छोड़ना आसान है, कीर्ति छोड़ना आसान नहीं।

—अज्ञात

१७

तृष्णा संतोष या कब्र

एक बार शेखसादी साहब किसी व्यापारी के यहाँ ठहरे। व्यापारी बहुत धनवान् था और उसके घर में बहुत माल भरा हुआ था। उसके यहाँ नौकर-चाकर भी अधिक संख्या में थे।

वह व्यापारी रात भर शेखसादी को अपनी कर्म-कथा सुनाता रहा। उसने अपने व्यावसायिक विवरण में बताया कि इतना माल तुर्किस्तान में है, इतना हिन्दुस्तान में और इतना अमुक-अमुक नगर और गाँव में इत्यादि सभी बातें बतलाईं। अपने व्यापार-क्षेत्र का विवरण देने के पश्चात् उसने कहा कि मुझे स्वास्थ्य सुधार के लिए अमुक देश जाना है और इसके पश्चात् लम्बी तीर्थ-यात्रा करने का विचार है। फिर इसके पश्चात् एकान्तवासी बनने का विचार है।

सादी साहब व्यापारी की बातें सुनते-सुनते थक गए, लेकिन उसकी राम-कहानी समाप्त नहीं हुई। अतः शेखसादी बीच में

वोल पडे—"क्या आपको पता है कि कितने दिन और जीवन शेप है?"

व्यापारी वोला—"नही, मुझे इसके विपय मे कुछ भी पता नही है।"

सादी साहव ने कहा—"तो फिर इतने वर्षों के प्रोग्राम क्यो वना रखे हैं। यदि आप चाहते है कि धन की इच्छा पूर्ति होने के पश्चात् ही धर्म का कुछ कार्य करूँ, तो यह निश्चय है कि धन की इच्छा कभी भी पूर्ण होने वाली नही है। जितना धन वढेगा, इच्छा उससे कही अधिक वढती चली जाएगी और इसका कही भी अत नही होता है।"

उन्होंने आगे कहा—"क्या आपको पता नही है कि आज एक प्रसिद्ध व्यापारी की घोडे से गिरकर मृत्यु हो गई है। जिस समय वह घोडे से नीचे गिर गया तो उसने लम्वी साँस ली और कहा—

"जीवन मे वहुत ही धन कमाया, परन्तु फिर भी अनेक इच्छाएँ मन की मन मे ही रह गई।"

"उस व्यापारी की भी आपकी तरह ही अनेक योजनाएँ वनी हुई थी, जिनको पूरा करने का वह स्वप्न ही देख रहा था कि आज यकायक मृत्यु की गोद मे लेट गया और उसकी सम्पूर्ण इच्छाएँ उसके साथ ही इस पृथ्वी के गर्भ मे समा गई।"

"मुझे यह कहने मे जरा भी सकोच नही है कि आपका स्थिति भी वहुत कुछ उस व्यापारी के ही समान है और आप सवसे पहले धन की इच्छा को पूर्ण कर लेना चाहते हैं और जव धन की इच्छा न रहेगी, तव धर्म-कर्म का श्रीगणेश करेंगे।

परन्तु मन की इच्छा इस प्रकार न किसी की पूर्ण हुई और न होने वाली है।

इसलिए यदि कुछ करना है तो इच्छा पूर्ति की एक ही औषधि है और वह है संतोष। यदि संतोष-धन आपको प्राप्त हो गया तो सम्भव है कि आपकी धर्म की ओर कुछ प्रवृत्ति हो सके अन्यथा आपकी भविष्य की सभी योजनाएँ आपके साथ ही जाएँगी।

सेवासाधी की स्पष्ट बातों को सुनकर व्यापारी की मोह-निद्रा कुछ भंग हुई और वह समझ गया कि वास्तव में अब तक के जीवन की लम्बी अवधि में मन की थोड़ी मात्रा में भी इच्छा पूर्ण नहीं हुई तो शेष अल्प-काल में जीवन की अनेक इच्छाएँ कैसे पूर्ण हो सकेंगी।

सेवासाधी साहब की मार्मिक बातों को सुनकर और उन पर गहराई से विचार करने के बाद व्यापारी ने अपना कुछ समय धर्म-ध्यान में लगाना प्रारम्भ कर दिया और निरन्तर इस ओर प्रवृत्ति बढ़ाता ही रहा।

इस प्रकार वह संतोष भी प्राप्त करने में सफल हो गया और यथाशक्ति सांसारिक कार्यों में भी मंगलपूर्ण सफलता प्राप्त करता चला गया।

१८

पर-निन्दा से तो निद्रा भली

एक फारसी लेखक प्रात काल बहुत ही शीघ्र उठ जाया करता था और शान्त वातावरण मे कुरान का पाठ किया करता था।

एक दिन उसके पिता ने उसे ऐसा करता हुआ देख लिया, तो उनको बहुत ही सतोष हुआ। उन्होंने पुत्र को बुलाकर कहा--"बेटा, यह तुम्हारा कार्य बहुत ही अच्छा है, इसलिए इस कार्य को निरन्तर चालू रखना। तुम्हारे इस कार्य से मुझे बहुत ही सतोष हुआ है।"

पिता की प्रशंसा सुनकर बेटा फूला नही समाया और दिन-भर जितने भी परिचित या मित्र उसको मिले, उन सबको उसने वह बात कह सुनाई।

उस दिन के पश्चात् सुबह के समय वह जिस व्यक्ति से भी मिलता, अपनी प्रशसा स्वय ही करने लगता कि मैं सुबह शीघ्र

ही उठकर कुरान का पाठ करता हूँ, जब कि अन्य व्यक्ति पड़े सोते रहते हैं।

जब उसके पिता को इस सम्बन्ध में पता लगा कि मेरा पुत्र प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख अपने इस कार्य की प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करने लगा है तो उनको बहुत निराशा हुई और उन्होंने अपने पुत्र को बुला कर कहा—

'बेटा स्वयं की प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करने से तो निद्रा में पड़ा रहना ही कहीं अच्छा है।

सोता साध जगाइए, करे नाम का जाप।
ये तीनों सोते भले, साकट, सिंह औं साँप॥

—कबीर

११

परोपकारी जीवन

रामदुलार नामक एक व्यक्ति बहुत ही धनवान् था। वह बहुत ही सीधा-सादा रहता था और बहुत साधारण वस्त्र धारण करता था। वह यथाशक्ति दान-पुण्य भी करता रहता था, परन्तु इस प्रकार करता था कि किसी को खबर तक भी न पडे। यदि वह किसी दीन-दुखी को कोई वस्तु देता, तो उससे पहले यह कह देता था कि किसी को भी इस सम्बन्ध मे कुछ मत कहना।

एक दिन वह गगा-स्नान करने जा रहा था। जाडे का समय था और वह बिना कम्बल ओढे हुए और साधारण कपडे पहने हुए पैदल जा रहा था।

कुछ दूर चलने के पश्चात् उसको एक पुराना मित्र मिल गया। मित्र को यह देखकर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि देखो यह व्यक्ति धनवान् होते भी ऐसा कृपण है कि कम्बल तक खरीदकर

ही उठकर कुरान का पाठ करता हूँ, जब कि अन्य व्यक्ति पड़े सोते रहते हैं।

जब उसके पिता को इस सम्बन्ध में पता लगा कि मेरा पुत्र प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख अपने इस कार्य की प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करने लगा है तो उनको बहुत निराशा हुई और उन्होंने अपने पुत्र को बुला कर कहा—

"बेटा स्वयं की प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करने से तो निद्रा मे पड़ा रहना ही कहीं अच्छा है।

बोलत चाल बनाइए, करै नाम का काम।
यह तीनों कैसे मले, कामद, सिंह औ' दाम ॥

—कबीर

११

परोपकारी जीवन

रामदुलार नामक एक व्यक्ति बहुत ही धनवान् था। वह बहुत ही सीधा-सादा रहता था और बहुत साधारण वस्त्र धारण करता था। वह यथाशक्ति दान-पुण्य भी करता रहता था, परन्तु इस प्रकार करता था कि किसी को खबर तक भी न पडे। यदि वह किसी दीन-दुःखी को कोई वस्तु देता, तो उससे पहले यह कह देता था कि किसी को भी इस सम्बन्ध मे कुछ मत कहना।

एक दिन वह गगा-स्नान करने जा रहा था। जाडे का समय था और वह बिना कम्बल ओढे हुए और साधारण कपडे पहने हुए पैदल जा रहा था।

कुछ दूर चलने के पश्चात् उसको एक पुराना मित्र मिल गया। मित्र को यह देखकर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि देखो यह व्यक्ति धनवान् होते भी ऐसा कृपण है कि कम्बल तक खरीदकर

नहीं ओढ़ सकता है। सवारी में बैठना तो दूर रहा कपड़ा ओढ़ने तक में कृपणता करता है।

आखिर मित्र से न रहा गया और वह बोला—"सेठ जी कहाँ जा रहे हो?

उत्तर मिला—"गंगा-स्नान करने जा रहा हूँ।

मित्र बोला 'कम से कम कम्बल तो ओढ़ लेते ऐसा कंजूसपन भी किस काम का जो स्वयं के शरीर की रक्षा में भी इतनी कृपणता कर रहे हो?'

सेठ सीधे स्वभाव का आदमी था इसलिए इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बोला और कुशल-क्षेम पूछकर आगे गमन किया।

दूसरे दिन वह मित्र सेठ के मकान के निकट होकर जा रहा था तो उसने बहुत से भिखारियों को उसके मकान में प्रवेश करते देखा। मित्र ने सोचा कि यह चुटकी लेने का अच्छा अवसर है क्योंकि बहुत से भिखारी अन्दर प्रवेश कर गए हैं और सेठ कृपण-स्वभाव का है, इसलिए वह इन सब को डंडा मारकर ही भगाएगा। ऐसा सोचकर वह चुपचाप सब कुछ कार्यवाही देखने के लिए खिड़की के पास खड़ा हो गया।

सभी भिखारी चुपचाप सेठ के मकान में बैठ गए और सेठ ने आकर आगे का दरवाजा बंद कर लिया। इसके पश्चात् सभी भिक्षुकों को प्रेमपूर्वक भोजन कराया और सभी को एक-एक कम्बल देकर विदा किया।

उस व्यक्ति को सेठ के इस कार्य से बहुत ही आश्चर्य हुआ और वह उस दिन से ही सेठ के निन्दक के स्थान पर उसका प्रशंसक बन गया।

ठीक ही कहा है—"वृक्ष स्वय अपने लिए फल नही देते हैं। नदी अपनी तृष्णा शान्त करने के लिए नही बहती है, इसी प्रकार परोपकारी भी अपने समस्त साधन स्वय के लिए न रख कर, मानव मात्र के कल्याण के लिए ही रखता है।"

पर उपकार वचन-मन-काया।
सत सहज सुभाव खगराया॥

—तुलसी

व्यापारी की पितृ-भक्ति

एक बार किसी मुख्य पादरी के चोंद से एक बहुमूल्य रत्न निकल कर गिर पड़ा। पादरी ने उसकी बहुत खोज की परन्तु वह मिल न सका।

पादरी को उत्सव में सम्मिलित होना था इसलिए उसे रत्न जड़ित चोंद धारण करना आवश्यक था। उसे रत्न की बहुत ही आवश्यकता हुई।

इधर-उधर खोज-बीन के पश्चात् पता लगा कि वैसा ही एक रत्न मास्काम के जौहरी के पास है जिसका वह बहुत मूल्य माँगता है इसलिए वह रत्न अभी तक बिक नहीं सका है।

पादरी का नौकर शाम के समय उस जौहरी के पास गया। जौहरी ने जो भी मूल्य माँगा नौकर वही मूल्य देने को तैयार हो गया। जौहरी अपने ऊपर के मकान से रत्न को लेने गया तो पता लगा कि रत्न की डिब्बी को उसका बीमार पिता सर के नीचे

रखकर सो रहा है। जौहरी ने सोचा कि पिताजी सो रहे है, इसलिए इनको इस समय जगाना उचित नही है।

जौहरी वापिस दुकान पर आया और पादरी के नौकर से कहा कि रत्न इस समय नही मिल सकेगा। ग्राहक ने समझा कि यह कुछ अधिक मूल्य लेना चाहता है, इसलिए मना कर रहा है। इस पर ग्राहक ने प्रस्ताव रखा कि मूल्य आप चाहे दुगना-तिगुना लीजिए, परन्तु रत्न इसी समय दे दीजिए।

ग्राहक की बात सुनकर जौहरी फिर ऊपर गया और उसने जैसे ही तकिए के नीचे धीरे स हाथ लगाया, तो पिता जी की सहज नीद खुलने लगी। उसने धीरे से हाथ वापिस हटा लिया और सोचा कि यदि अब डिब्बी निकाली तो पिता जी की निद्रा भग हो जाएगी।

जौहरी नीचे आया और बोला—"मेरे पिता जी बीमार है और इस समय निद्रा की अवस्था मे है और वह रत्न की डिब्बी उनके सर के नीचे है, इसलिए इस समय उसका मिलना असम्भव है, क्योकि मैं पैसो के लोभ हेतु अपने पिता की निद्रा भग नही कर सकता हूँ।"

जौहरी की बात सुनकर वह नौकर सीधा पादरी के पास गया और उनको सब वृत्तान्त कह सुनाया। पादरी को समझने मे देर न लगी कि वास्तव मे पितृ-भक्ति के सन्मुख रत्न की कुछ भी कीमत नही है। इसलिए उसने उस दिन अपने मन मे विचार कर लिया कि नश्वर और भौतिक रत्न से तो पितृ-भक्ति रूपी रत्न का अधिक प्रकाश है। इसके पश्चात् उसने कभी भी रत्न का मोह नही किया।

१०१

न्याय-पालक

च्यांग नामक व्यक्ति चीन का एक प्रसिद्ध गवर्नर हुआ है। वह बहुत ही न्याय-प्रिय था और किसी के साथ अन्याय होना सहन नहीं करता था। उसने गवर्नर का पद ग्रहण करते ही राज्य के समस्त अधिकारियों और विशेषकर न्यायाधीशों को आदेश दिया कि राज्य में सभी प्रकार के अत्याचार और भ्रष्टाचार समाप्त हो जाने चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेद-भाव के समुचित न्याय मिलना चाहिए।

भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए उसने गुप्त वेश-धारी पुलिस भी रखी लेकिन जितनी उसे आशा थी उतनी सफलता नहीं मिली और भ्रष्टाचार निरन्तर बढ़ता ही चला गया।

एक दिन च्यांग साधारण वेश में घोड़े पर सवार होकर अपने प्रान्त की वास्तविक स्थिति का अवलोकन करने निकला। उसने जिले के उच्च अधिकारी (जिलाधीश) को भी गुप्त वेश में अपने साथ ले लिया।

गवर्नर और जिलाधीश—दोनो अधिकारी जिले का दौरा करते हुए एक नगर मे पहुँचे और उसी वेश मे एक होटल मे आकर ठहरे। गवर्नर (च्याग) जब चाय पी रहे थे, तो अचानक ही उन्होने रसोइए से नगर की न्याय व्यवस्था के सम्बन्ध मे पूछा।

गवर्नर ने कहा—"हम यहाँ एक केस के सम्बन्ध मे आए हैं और बाहर के होने के कारण हमे यहाँ के न्याय के सम्बन्ध मे कुछ भी पता नही है कि यहाँ का न्याय कैसा है ?"

रसोइया इधर-उधर देखकर बोला—"हजूर, यहाँ के न्याय की क्या पूछते हो—'जिसने करी जेब गरम, न्याय हुआ उसके लिए नरम'—यहाँ तो न्याय धर्म की तराजू मे नहीं, बल्कि धन की तराजू मे तोला जाता है। यदि आप कुछ ले-देकर ही फैसला कर लें, तो लाभ रहेगा। न्यायालय मे आपको उचित न्याय मिल सकेगा, इसमे हमे बिल्कुल विश्वास नही है। यहाँ का न्यायाधीश न्याय की रक्षा नही, बल्कि न्याय को बेचता है और थैली के सामने झुक जाता है।

जिलाधिकारी खडा-खडा सुनता रहा, परन्तु गवर्नर साथ था, इसलिए वह कुछ कह नही सकता था।

इसके पश्चात् वे दोनो बाजार मे भी घूमे और वहाँ भी कुछ लोगो से इधर-उधर की बातो के साथ ही नगर के न्याय के सम्बन्ध मे भी पूछा तो न्याय-व्यवस्था उचित न होने की शिकायत मिली।

इसके पश्चात् दोनो अधिकारी चले गए। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार उसी दिन गवर्नर राजधानी को रवाना होने वाला था, लेकिन उसे उसी रसोइए का ध्यान आ गया कि कही जिला-

अधिकारी उसे अनुचित रूप से दंड न दे दे इसलिए वह सीधा होस्टेल चला गया।

जिला अधिकारी रसोइए की बातों से प्रेरित था ही इस-लिए उसने उसको पकड़ कर लाने का आदेश दे दिया। पुलिस के अधिकारी होस्टल गए और रसोइए को पकड़ लिया। जब गुप्त वेशधारी गवर्नर ने मना किया तो उसे भी पकड़ लिया और दोनों को जिलाधीश के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

गवर्नर को जब पुलिस लेजा रही थी तो उसने अपना मुँह कपड़े से ढाँप लिया था जिससे जिलाधीश के सम्मुख पहुँचने पर उसकी पहचान न हो सके।

जिलाधीश ने जब उन दोनों को झुकने के बल बैठने को कहा—उसी समय गवर्नर के मुँह से कपड़ा नीचे गिर गया और जिलाधीश ने गवर्नर को पहचान लिया। जिलाधीश तुरन्त कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया और डर से काँपने लगा।

गवर्नर ने रसोइए को छोड़ दिया और जिलाधीश को तत्काल मौतिल करके उसके स्थान पर दूसरा जिलाधीश नियुक्त कर दिया।

१०२
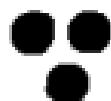
सच्चे संत को ही दान

एक बादशाह संतो का बहुत ही मान-सम्मान किया करता था। जब भी उसके ऊपर कोई संकट आता था, तो वह संतो की सेवा मे पहुँचता और उनकी खूब सेवा-सुश्रूषा करता था।

एक बार उसने किसी संकट के निवारण हेतु यह प्रतिज्ञा की, कि यदि मेरा संकट टल गया तो, एक हजार रुपयो की थैली संतो को भेट करूँगा।

कुछ दिन के पश्चात् उसके संकट का समय निकल गया, तो उसने अपने एक कर्मचारी को एक हजार की थैली लेकर संतो को भेट देने हेतु भेजा।

नौकर दिन-भर इधर-उधर घूमता रहा और शाम को थैली सहित बादशाह के सम्मुख उपस्थित हुआ। नौकर को थैली सहित वापिस आया देखकर बादशाह को बहुत ही आश्चर्य हुआ।

जब बादशाह ने इसका कारण पूछा तो नौकर बोला—"हुजूर! मैंने बहुत खोज-बीन की परन्तु उपयुक्त पात्र मुझे एक भी नहीं मिला जिसको मैं थैली भेंट करता।"

बादशाह क्रोधित होकर बोला—"मूर्ख! इस नगर में पाँच से अधिक संत हैं फिर भी तुमको कोई ऐसा संत नहीं मिला जिसको तुम यह थैली भेंट करते। तुम बहुत विचित्र व्यक्ति हो जो तुम्हें दिन भर ढूंढने पर भी कोई योग्य संत नहीं मिला।"

नौकर बोला—"सरकार वेषधारी संत तो बहुत हैं परन्तु सच्चा संत तो आपके धन को छूएगा भी नहीं और जो धन का इच्छुक है—वह संत नहीं है इसलिए मैंने वापिस लाना ही उचित समझा।"

नौकर की बात सुनकर बादशाह खुश हो गया और उसकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करने लगा। इसके पश्चात् बादशाह का विश्वास दिन-प्रति दिन उस नौकर पर बढ़ता ही चला गया और वह अपनी प्रामाणिकता एवं सत्य निष्ठा के कारण बहुत ही प्रगति कर गया।

१०३

निर्धनता : चरित्र की परीक्षा

रांका और बांका—
दोनो वृद्ध पति-पत्नि जगल मे लकडी एकत्रित करने के लिए जाया करते थे। अपने इस कार्य से जो भी उनकी आय होती थी, उसी से अपना तथा अपने परिवार का पालन करते थे।

एक दिन नारद मुनि ने उनको यह कठिन परिश्रम करते देख लिया तो मुनि को दया आ गई और उन्होंने भगवान् विष्णु से उनका दु ख दूर करने का आग्रह किया।

भगवान् बोले—"नारद, इनके दु ख दूर करने का कोई उपाय नही है।" नारद को इस बात पर विश्वास नही हुआ और वे हँसने लगे।

भगवान् ने आगे कहा—"अच्छा, यदि आपको मेरे कथन पर विश्वास नही हैं, तो जिस मार्ग से वे दोनो जा रहे हैं, उस मार्ग पर कुछ आगे की ओर एक थैली डाल दो।" नारद ने ऐसा ही किया।

जब वह वृद्ध उस थैली के पास आया तो उसने देखा कि थैली में धन है, साथ ही उसने सोचा कि कहीं पत्नी का मन इस पराए धन को देखकर ललचा न जाए, इसलिए उसने उस थैली को मिट्टी से ढाँप दिया जिससे पत्नि उसे न देख सके। परन्तु पत्नि ने उसे देख ही लिया।

जब पत्नि उस थैली के निकट आई तो पति से बोली— "आपने इस पर धूल क्यों डाली है? धूल पर धूल डालने की क्या जरूरत थी? क्या आपको सोने व धूल में कुछ अन्तर प्रतीत होता है?

पति ने पत्नि को अपने से भी अधिक ज्ञानी जानकर प्रसन्नता एवं संतोष अनुभव किया और उसे बहुत ही धन्यवाद दिया।

अब भगवान् ने नारद से कहा— "मुनिवर देखा निर्धन होते हुए भी इस दम्पत्ति के कितने सुन्दर विचार हैं?

नारद ने फिर भगवान् से कहा कि—"यदि ये लोग धन नहीं लेते हैं तो कम से कम इनके लिये लकड़ी ही एकत्रित कर दो जिससे इनको वृद्धावस्था में कठिन परिश्रम न करना पड़े।"

भगवान् ने अपने मायाबल से जंगल में कुछ दूर पर लकड़ी का ढेर तैयार कर दिया। जब वे पति-पत्नि उस लकड़ी के ढेर के निकट पहुँचे तो उन्होंने सोचा कि यह लकड़ी किसी दूसरे व्यक्ति ने परिश्रम करके एकत्रित की हैं, इसलिए उन लकड़ियों को उन्होंने छूआ भी नहीं।

नारद जी पति-पत्नि के शुद्ध विचारों को देखकर बहुत ही प्रसन्नता हुई और वे उनकी प्रशंसा करते हुए ही चल गए।

१०४

हिंसा पर अहिंसा की विजय

एक बार सेक्सनी के ड्यूक के साथ एक पादरी का झगडा हो गया। यह झगडा राजनीति और धर्म के मत-भेद के कारण था। पादरी न्याय के पथ पर था और धार्मिक मामलो मे उसे अधिकार भी वहुत थे, परन्तु उसका मुख्य कार्य तो निर्धन, निर्वल एवं वीमारो की सहायता करना ही था।

ड्यूक ने पादरी के विरुद्ध फौजी कार्यवाही की तैयारी प्रारम्भ कर दी। जव पादरी को इन सव वातो का पता लगा तो उसके हृदय पर इसका कोई असर नही हुआ और वह सदा की भाँति मानव सेवा मे ही लगे रहा।

ड्यूक ने पादरी का पता लगाने के लिए अपने गुप्तचर भी भेजे, परन्तु जव वे गुप्तचर पता लगाने गए तो उनको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पादरी को फौजी कार्यवाही की विल्कुल भी

चिन्ता नहीं है वह तो निश्चिन्त भाव से परोपकार के कार्य में संलग्न है।

गुप्तचरों ने क्यूक को पादरी का सच्चा विवरण प्रस्तुत किया। जब क्यूक को सब विवरण प्राप्त हो गया तो उसका भी हृदय परिवर्तित हो गया। उसने भी सोच लिया कि जब ऐसे फौजी तैयार के सम्बंध में सुनकर भी पादरी अपने बचाव की ओर कोई ध्यान न देकर परोपकार में ही तन्मयता से लगा हुआ है तो ऐसे सदाचारी एवं सत्य-निष्ठ कर्त्तव्य-पालक के साथ मैं ही अन्यायपूर्ण कदम उठाकर चरित्र-भ्रष्ट क्यों होऊँ ?

क्यूक ने सेना को पीछे हटा लिया और सेनापति को समझाया कि ऐसे सत्य-प्रिय एवं अहिंसक व्यक्ति के विरुद्ध यदि हम फौजी कार्यवाही करते तो कभी भी हमारी विजय नहीं होती और हमें एक न एक दिन अहिंसा की शक्ति के सम्मुख झुकने ही टेकने पड़ते। इस प्रकार हमारी पराजय भी होती और सम्मान भी नहीं मिलता। परन्तु अब हमें सम्मान भी मिलेगा और एक मानवता-प्रेमी सज्जन व्यक्ति के साथ व्यर्थ के झगड़े में पड़ने से भी हम बच जायेंगे।

ooo

१०५

प्रभु को केवल प्रेम चाहिए

त्रेता युग मे दक्षिण भारत मे रहने वाले आदिम-जाति के निषाद लोगो का मुखिया श्री रामचन्द्र जी का परम भक्त था। वह साधारण पढा-लिखा भी नही था, इसलिए सभ्यता से उसे बोलना नही आता था। हृदय साफ था, परन्तु स्वर कठोर था।

श्रीरामचन्द्र जी का भक्त होने के कारण एक दिन उसने प्रेम के वशीभूत होकर रामचन्द्र जी को 'तू' कहकर सम्बोधित किया। उसके इस असभ्य व्यवहार को रामचन्द्र जी ने सहन ही नही कर लिया, बल्कि प्रसन्न भी हुए। परन्तु लक्ष्मण इस व्यवहार को सहन न कर सके।

लक्ष्मण ने जब दूसरी बार भी उसको इस प्रकार पुकारते सुना तो वह आग-बबूला हो गए और उसे दण्ड देने को तैयार हो गए।

उसी समय रामचन्द्र जी बोले "लक्ष्मण! तुम इस पर क्यों रुष्ट हो? शुद्ध और अत्यन्त प्रेम के कारण ही यह मुझे 'तू' कहकर पुकारता है, इसलिए इसमें इसका कोई दोष नहीं है यह भाव तो इसकी अगाध भक्ति को प्रकट करता। इसके इस व्यवहार एवं बोलचाल से तो इसके प्रति मेरा स्नेह निरंतर बढ़ता जा रहा है।

श्री रामचन्द्र ने आगे कहा—"प्रेम के द्वारा कोई चांडाल भी मुझे अपना बना सकता है परन्तु प्रेम रहित ब्राह्मण भी मेरे किसी काम का नहीं है। जिसके हृदय में मेरे प्रति प्रेम नहीं है उसका लाया हुआ अमृत भी मेरे लिए विष है और जिसका मेरे प्रति शुद्ध प्रेम है और हृदय में मुझे अपना लेता है उसका लाया हुआ विष भी मेरे लिए अमृत है।

श्रीराम का अनन्य भक्त होने के लिए किस साधन की आवश्यकता है इसके बारे में जगत-जननी सीताजी की खोज करने के अवसर पर हनुमान जी ने विभीषण को इस प्रेम-मय साधन का संकेत किया था—

> रामहिं केवल प्रेम पिआरा,
> जानि लेउ जो जाननिहारा।
>
> —तुलसी

०००

१०६

श्रेष्ठ कौन ?

एक वार कुत्ते की ओर सकेत करते हुए परम भक्त हुसेन से पूछा गया कि आप दोनो मे से कौन श्रेष्ठ है ?

हजरत हुसेन ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया- "जब मैं अपना समय परोपकार एव पुण्य के कार्यों मे व्यतीत करता हूँ, उस समय तो मैं कुत्ते से वहुत श्रेष्ठ हूँ, परन्तु जब पापमय विचार मन मे आते है और अन्य व्यक्तियो के प्रति ईर्ष्या की भावना एव राग-द्वेष मन मे विचरण करने लगता है, तो उस समय कुत्ते का जीवन मेरे से कही अधिक श्रेष्ठ होता है।"

हुसेन का उत्तर सुनकर वहाँ उपस्थित सभी व्यक्तियो को वहुत प्रसन्नता हुई और वे उनका गुणगान करते हुए वहाँ से चले गए।

१०७

जहाँ अहम् वहाँ ब्रह्म नहीं

एक व्यक्ति जप-तप तो बहुत किया करता था परन्तु उसे घर-गृहस्थी की चिन्ता निरन्तर लगी रहती थी। यहाँ तक कि धर्म ध्यान के समय भी वह उसी चिन्ता से ग्रसित रहा करता था।

एक दिन उस व्यक्ति को एक मुसलमान भक्त मिला। उसकी भक्ति के सम्बन्ध में जानकारी करने हेतु उसने कुछ प्रश्न पूछे।

मुसलमान भक्त ने कहा — जब सच्चे हृदय से खुदा को स्मरण करता हूँ तो ऐसा अनुभव होता है कि साक्षात् खुदा मेरे शरीर के अन्दर प्रवेश कर गया है और उस समय मुझे शान्ति एवं वास्तविक सुख-सुविधा का पूर्ण अनुभव होता है परन्तु जब मन में अहंकार का प्रवेश होता है तो उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि खुदा शरीर से बाहर चला गया है।

खुदा के बाहर प्रतीत होने से मन को अपार कष्ट होता है, इसलिए फिर मैं उसे बुलाने का प्रयत्न करता हूँ तो बस, एक ही उत्तर सुनाई पडता है—'हम दोनो साथ नही रह सकते हैं। हम दोनो मे से एक को अवश्य ही बाहर निकलना पडेगा।' इसलिए दोनो (अहकार और ईश्वर) का एक स्थान पर एकत्रित होना असम्भव है।"

जब मानव मन मे ईश्वर की अनुभूति, अर्थात् प्रिय का निवास होता है, तब मन की स्थिति एक सराय की भाँति हो जाती है, जिसमे बाहर से आने वाला नया मुसाफिर नही ठहर सकता। क्योकि मन-रूपी सराय मे पहले से ही ईश्वर-रूप प्रिय पथिक विराजमान हैं। इसी गूढ भाव को प्रकाशित करते हुए मध्ययुगीन कविश्रेष्ठ रहीम खानखाना ने कहा है—

> प्रियतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
> भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिर जाय॥

१०८

भरण-पोषण की भी क्या चिन्ता ?

जीवन के लिए भोजन आवश्यक है और उसके लिए प्रयत्न करना भी सार्थक है परन्तु हर समय भोजन के लिए चिन्ता करना व्यर्थ है।

एक बार ईसामसीह ने अपने शिष्यों को शिक्षा देते हुए कहा—"हे शिष्यो! तुम अपने जीवन में कभी भी खाने-पीने एवं पहनने की चिन्ता न करना। खान-पान एवं कपड़े से अधिक मूल्यवान तो यह जीवन है—जो कि तुम्हें कर्मों के फल-स्वरूप मिला है।

आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को देखो जो कभी भी अन्न आदि की चिन्ता नहीं करते और न संग्रह ही करते हैं, परन्तु फिर भी वे भूखे नहीं रहते हैं। तुम तो पशुओं से बहुत अच्छे हो, इसलिए फिर इतनी चिन्ता क्यों करते हो?"

१०९

संकट में भी सन्तोष

नेशापुर शहर मे एक बहुत बडा व्यापारी रहता था। वह विदेशो से बहुत माल मँगाता एवं भेजता था। उसने अपने व्यापार द्वारा खूब धन अर्जित किया था।

एक दिन माल से भरा उसका जहाज चोरो ने लूट लिया। इस सम्बन्ध मे पता लगते ही बहुत से व्यापारी सहानुभूति प्रकट करने के लिए उसके पास आए और अनेक प्रकार से उसको सान्त्वना देने लगे।

वह व्यापारी कुछ भी नही बोला और चुप-चाप आगन्तुको की सेवा-सुश्रूषा मे जुट गया। व्यापारियो ने समझा कि इसको माल के चले जाने से बहुत ही कष्ट है, इसलिए यह बोल नही रहा है।

अन्त में वह बोला—"भाइयो आपने मेरे घर पर पधार कर जो मुझे धीरज बँधाया है उसके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ परन्तु इसकी प्रसन्नता तो मुझे आपके यहाँ आने से पूर्व भी थी कि—

१—मेरे माल के अतिरिक्त अन्य किसी व्यापारी का माल चोरी नहीं गया।

२—चोरों ने केवल माया ही धन लूटा है आत्मा तो मेरे पास ही है।

३—मेरा धर्म रूपी धन तो मेरे पास ही है उसे तो कोई लूट नहीं सकता है केवल सांसारिक धन ही तो गया है।

व्यापारी की बात सुनकर सबको आश्चर्य हुआ और वे प्रसन्नता पूर्वक अपने-अपने घर लौट गए।

०००

११०

मन की इच्छा-पूर्ति

एक मुसलमान को वैराग्य हो गया और उसे सभी वस्तुएँ भार-स्वरूप प्रतीत होने लगी। एक दिन उसने घर के जेवरात, बर्तन, कपडे बाहर निकाल कर रख लिए। इसके पश्चात् उसने बहुत से याचको को इकट्ठा कर लिया।

उसने सभी सामान उन याचको को दे दिया और अपने पास एक फटी कौडी भी नही रखी।

वह बोला—"हे मन, अब तेरे पास कुछ भी नही रहा और अब तू बहुत ही निर्धन हो गया है, इसलिए किसी भी वस्तु की इच्छा मत करना। यदि इच्छा भी करेगा तो वह पूर्ण नही हो सकती है, क्योकि अब एक भी पैसा पास नही है।" उस समय मन ने स्वीकार कर लिया कि अब कोई वस्तु नही मागूगा।

मन की गति चचल होती है, इसलिए वह कहाँ तक स्थिर रह सकता था। जब उस व्यक्ति को शाम तक भोजन नही मिला और शाम को एक नगर के बाहर विश्राम के लिये बैठा तो मन मे इच्छा हुई कि कही से चावल व मछली खाने को मिले। परन्तु

पास में फूटा पैसा भी नहीं था इसलिए मन की इच्छा पूर्ण नहीं हुई।

कुछ समय पश्चात् एक गाड़ी वाला आया तो उस व्यक्ति ने उस गाड़ी वाले से पूछा कि—"इस बैल का एक दिन का कितना किराया देना पड़ता है?

गाड़ी वाला बोला—"एक तांबे का सिक्का देना पड़ता है।"

भरामी बोला—"भाई इस बैल को छोड़कर मुझे गाड़ी में जोत ले और शाम को मुझे छोड़कर एक तांबे का सिक्का दे देना जिसमें मैं अपना पेट भर सकू।

गाड़ी वाले को दया आ गई और उसने बैल को छोड़कर उसे गाड़ी में जोत लिया। रात भर उससे काम लिया और सुबह होते ही उसे एक तांबे का सिक्का देकर छोड़ दिया।

रात-भर के परिश्रम से उसका शरीर बहुत थक चुका था इसलिए उसे विश्राम की इच्छा हुई। विश्राम से पूर्व उसे मन की इच्छा भी पूर्ण करनी थी इसलिए वह उस तांबे के सिक्के के बदले में चावल व मछली लाया और पेट भर कर भोजन किया।

भोजन के पश्चात् वह अपने मन से कहने लगा—"अरे मन यदि तू प्रतिदिन ऐसी ही इच्छा करेगा तो इसी प्रकार परिश्रम करना पड़ेगा और तभी ऐसा भोजन मिलना सम्भव हो सकता है।

रात भर के परिश्रम से उसके मन को इतना कष्ट हुआ कि भविष्य में उसने कभी भी ऐसे भोजन की कल्पना तक करनी छोड़ दी और जहाँ जैसा भोजन प्राप्त हो गया वैसा ही स्वीकार कर अपना जीवन-निर्वाह किया।

१११

विद्यासागर और स्वावलम्बन

एक रेल्वे स्टेशन पर एक बगाली डाक्टर हाथ मे एक छोटा-सा थैला लिए हुए खडे थे। वे उसी समय गाडी से उतरे थे और किसी कुली की खोज मे थे।

जब उनको खडे खडे बहुत समय हो गया और कोई कुली नही आया तो उन्होने मजदूर को आवाज दी। उनकी आवाज को सुनकर साधारण वेशधारी एक युवक उनके पास आ गया।

युवक ने डाक्टर साहब के हाथ से थैला ले लिया और अपने कधे पर रखकर उनको सडक तक पहुँचा दिया।

जब वह युवक वापिस लौटने लगा, तो डाक्टर साहब उसको दो आने के पैसे देने लगे।

युवक ने हँसकर कहा— 'आप छोटी-सी बेग उठाने के लिए घबरा रहे थे इसलिए मैंने आपकी सहायता कर दी है इसके लिए मजदूरी कैसी?'

जब वह डाक्टर पैसे देने के लिए अधिक आग्रह करने लगे तो युवक ने कहा— 'मेरा नाम ईश्वरचन्द्र विद्यासागर है।

युवक का नाम सुनकर डाक्टर साहब लज्जावश स्तब्ध रह गए और गद्गद होकर ईश्वरचन्द्र के पैरों पर गिर पड़े।

○○
○

'स्वावलम्बन' सतत निर्भर सफलता का अन्तिम साधन है।

—स्वामी विवेकानन्द

१९२

परखने की कला

एक युवक को बांसुरी बजाने की कला का सुन्दर अभ्यास था। वह अपने इस कार्य मे इतना प्रवीण था कि उसकी प्रसिद्धि बहुत दूर-दूर तक फैल गई।

एक बार वह किसी सेठ के पास इस विचार से गया कि सेठ जी बांसुरी सुनकर बहुत प्रसन्न होंगे और समुचित पुरस्कार भी देंगे।

परन्तु सेठ चिडचिडे स्वभाव का था और अव्वल नम्बर का लोभी भी था। कला किस चिडिया का नाम है, उसे पता नही था।

युवक ने घटो तक बांसुरी सुनाई, परन्तु अन्त मे सेठ ने कहा—"इसमे क्या कला है ? बांसुरी पोली है, उसमे हवा भरेगी तो वह बजेगी ही। यदि सच्चे कलाकार बनते हो तो इस मेरी

साथी को भी और बजाकर दिखाओ जिससे पता चले कि तुम कितने बड़े कलाकार हो?

सेठ की बात सुनकर वह युवक चुपचाप वहाँ से वापस चला गया।

इस कथानक से यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य को अपने गुण एवं उपयोगिता का प्रदर्शन उसी क्षेत्र में करना चाहिए, जहाँ गुण-ग्राहकता की भावना हो। यदि कोई कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन पुरस्कार के लोभवश विपरीत क्षेत्र में करेगा तो उसका फल 'भैंस के सामने बीन बजाना' जैसा ही प्रकट होगा।

११३

राजा होने का भी अवकाश नहीं

एक दिन मेसि-डियो के राजा फिलिप दरबार मे बैठे हुए थे। वे राज्य-कार्य से निवृत्त होकर सभा को स्थगित करने की तैयारी कर ही रहे थे कि उसी समय एक वृद्धा आई और अपनी कष्ट-कथा सुनाने लगी।

राजा ने कहा—"अब अवकाश नही है, इसलिए फिर कभी आना।"

वृद्धा ने कहा—"क्या, राजा होने की भी फुरसत नही है ?"

वृद्धा के शब्दो ने राजा को प्रभावित कर दिया और वे कुछ देर चुपचाप खडे रहे।

उन्होंने उसी समय उस वृद्धा की कष्ट-कथा सुनी और उसके निवारण हेतु एवं उचित न्याय हेतु सन्तोषप्रद वचन देकर उसको विदा किया।

कुछ दिनों के पश्चात् राजा ने वृद्धा के कष्ट निवारण के लिए उचित न्याय की व्यवस्था की और उस दिन के पश्चात् उसने कभी भी व्यस्त होने के कारण से किसी फरियादी—प्रार्थी को दरबार से निराश नहीं लौटाया।

●●
●

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक-अधिकारी॥

—तुलसी

११४

मुख का आभूषण : लज्जा

आजकज अपने देश मे भी पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर मुख की सुन्दरता के लिए क्रीम, पाउडर आदि कृत्रिम सौन्दर्य-उपकरणो का वहुतायत से प्रयोग होने लगा है। वनावटी सौन्दर्य एव फैशन का भूत दिन-प्रतिदिन वढता ही जा रहा है।

एक दिन इसी प्रसग वश अरस्तू (अरिस्टोटिल) ने पीथिया नामक कन्या से पूछा कि मुख को सुन्दर वनाने के लिए किस वस्तु का प्रयोग उत्तम है।

कन्या ने कहा—"लज्जा, मुख की सुन्दरता वढाने का सर्वोत्तम उपकरण है।"

कन्या ने आगे कहा—"जिस वहन ने लज्जा रूपी आभूषण को धारण नही किया है, वह चाहे शारीरिक दृष्टि से कितनी भी

सुन्दर क्यों न हो और उसने बाहरी सुन्दरता बढ़ाने के लिए किसी भी वस्तु का उपयोग क्यों न किया हो उसकी सुन्दरता तब तक पूर्ण नहीं कही जा सकती जब तक लज्जा की झलक उसके मुख पर विराजमान नहीं है।

'वस्तुतः' लज्जा ही स्त्री का सर्वोपरि आभूषण एवं सौन्दर्य वृद्धि का मुख्य साधन है।
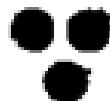
A blush is a sign that nature hangs to show where chastity and honour dwell.

—Gotthold

११५

वुद्धि का फेर

एक कुम्हार गवे पर चढा जा रहा था और उसका वेटा पीछे-पीछे पैदल चल रहा था। लोग उसे देखकर कहने लगे—'देखो, कितना स्वार्थी है यह वाप ! वेचारा लडका तो पैदल घिसट रहा है और वूढा वैल सवारी कर रहा है।"

फिर क्या था, वाप तुरन्त उतर पडा और लडका गवे पर सवार हो गया। जव वे कुछ दूर और वढे तो रास्ते मे एक व्यक्ति मिला, वह उनको देखकर कहने लगा—"देखिए, जमाना कितना विगड गया है ? कैसा घोर कलियुग आ गया है ? वाप पैदल घिसट रहा है और वेटा कैसी शान से गवे पर चढा जा रहा है।"

यह सुनते ही लडका उतर गया और वाप के साथ पैदल चलने लगा। इसी तरह पैदल चलते हुए जव दोनो एक कस्वे मे होकर गुजरे, तो वहाँ के लोगो ने कहना शुरू किया—"कितने मूर्ख है, ये दोनो ! सवारी का सावन—गवा साथ है, फिर भी पैदल ही घिसटते जा रहे ह।"

जब वे दोनों सुनते-सुनते तंग आ गए तो दोनों ही यह सोच कर गधे पर सवार हो गए कि देखें अब लोग क्या कहते हैं?

कुछ दूर चलने पर एक राहगीर मिला जो यह कहने लगा — 'भाई, कैसा घोर कलियुग आ गया है। अब संसार में दया धर्म का तो नाम ही नहीं रहा। इस बेचारे कमजोर जीव पर दो हट्टे-कट्टे मुस्टन्डे चढ़े बैठे हैं।"

उस राहगीर की बात सुनकर बाप-बेटे दोनों गधे से उतर पड़े और मंत्रणा करके गधे को बांध कर बांस में लटका लिया और कंधे पर रखकर चल दिए।

कुछ ही दूर पहुँचे थे कि आवाज सुनाई पड़ी ——— "लो भाई, इन्होंने तो जैनियों को भी मात दे दिया है ऐसी भी क्या जीव-दया है जो गधे को कंधे पर उठाए जा रहे हैं?"

बस समझ लीजिए यह बात बिल्कुल सत्य है कि— 'जितने मुंह उतनी ही बातें।' सामाजिक जीवन में व्यक्ति को सुननी सब की चाहिए और करनी अपने मन की चाहिए। बुद्धि की तुला पर तोलकर जो व्यक्ति संसार में अपना कार्य करते हैं, वे ही सफल कहे जा सकते हैं। इसके विपरीत जो इधर-उधर की सुनकर करने का प्रयत्न करते हैं, वे तो परिवर्तन की चक्की में ही पिसते रहते हैं—आज किसी के कहने से कुछ करने लगे तो कल कुछ।

इस परिवर्तनशील संसार में मानव को तभी सफलता प्राप्त हो सकती है जब वह सब की सुनकर अपने मन को तराजू में में तोलकर काम करे और निरन्तर प्रगति एवं सफलता के मार्ग पर अग्रसर होता रहे।

११६

सच्चा-प्रेम

एक स्त्री अपने प्रियतम को बहुत प्रेम करती थी। प्रियतम के अतिरिक्त उसे कोई दूसरा व्यक्ति अच्छा नही लगता था।

एक बार उसका प्रियतम परदेश चला गया, तो उसके वियोग मे वह खाना-पीना भी भूल गई। उसके लिए एक एक पल व्यतीत करना कठिन हो गया। इस प्रकार उसका शरीर भी क्षीण होने लगा।

एक दिन उसे पता लगा कि प्रियतम अमुक स्थान पर है, तो उसे अपार हर्ष हुआ और वह उसी क्षण उससे मिलने के लिए चल दी।

जिस मार्ग से वह जा रही थी, उसी मार्ग पर बादशाह ने पडाव डाल रखा था और वह अपने तम्बू के पास नमाज पढ रहा था। प्रिय-मिलन की तीव्रतम उत्कण्ठा मे वह इतनी व्याकुल थी कि मार्ग मे उसने यह भी नही देखा कि बादशाह नमाज पढ

रहा है। उसके पैर की ठोकर भी बादशाह को लग गई, फिर भी उसने नहीं देखा कि अमुक व्यक्ति कौन है।

स्त्री के इस अशिष्ट व्यवहार से बादशाह को क्रोध तो बहुत आया परन्तु उस समय नमाज पढ़ रहा था इसलिए क्रोध को शान्त करना ही उचित समझा।

जब वह स्त्री प्रियतम से मिलकर वापिस लौटी तब भी उसको बादशाह मिला।

बादशाह ने कहा—'अरे निर्लज्ज तुझे यह भी ज्ञान नहीं रहा कि नमाज पढ़ते हुए व्यक्ति से अलग होकर चलूं। तूने मुझे ठोकर मार दी और प्रेम-दीवानी बनी सीधी निकल चली।"

स्त्री बोली—'क्षमा प्रार्थना मुझसे असावधानता की जो महान भूल हुई है उसके सम्बन्ध में आपके सन्तोष के लिए यह कहना चाहती हूँ—

नर राची सूझे नहीं तुम क्यों लखो सुजान।
पढ़ कुरान कोरे भये नहीं राचा रहमान॥

"मैं तो नर रूप प्रियतम के वियोग से इतनी व्याकुल हो गई थी कि मार्ग के व्यक्तियों तक को न देख सकी। किन्तु आप तो सर्वशक्तिमान खुदा की भक्ति कर रहे थे फिर आपने मुझे कैसे देख लिया। आप नमाज पढ़ते-पढ़ते बूढ़े हो गए, परन्तु प्रभु के वास्तविक प्रेम की ज्योति आपके हृदय में नहीं जगी।

उस समय बादशाह को क्रोध तो बहुत आया हुआ था परन्तु स्त्री की बात को सुनकर उससे कोई उत्तर न बन पड़ा और मन ही मन में लज्जित हो गया।

OO
O

११७

मुन्ने के वावू हरे-हरे

एक वार कोई विवाहित स्त्री मंदिर मे कथा सुनने के लिए गई। उसने वडे ही प्रेम से कथा सुनी और उस दिन व्रत भी रखा।

कथा के अन्त मे 'कृष्ण-कृष्ण, हरे-हरे' का हरि-कीर्तन प्रारम्भ हुआ, तो वह सोचने लगी कि वह क्या बोले और क्या न बोले ?

वात यह थी कि उसके पति का नाम कृष्ण था। हिन्दू महिला होने के कारण भला वह अपने पति के नाम का कीर्तन सभी के सामने कैसे करे ? वहुत सोच-विचार के पश्चात् उसे एक युक्ति सूझी। वह प्रसन्नता से "कृष्ण-कृष्ण, हरे-हरे" के स्थान पर "मुन्ने के वावू हरे-हरे" चिल्लाने लगी।

रहा है। उसके पैर की ठोकर भी बादशाह को लग गई, फिर भी उसने नहीं देखा कि अमुक व्यक्ति कौन है।

स्त्री के इस अशिष्ट व्यवहार से बादशाह को क्रोध तो बहुत आया परन्तु उस समय नमाज पढ़ रहा था इसलिए क्रोध को शान्त करना ही उचित समझा।

जब वह स्त्री प्रियतम से मिलकर वापिस लौटी तब भी उसको बादशाह मिला।

बादशाह ने कहा— 'अरे निर्लज्ज तुझे यह भी ज्ञान नहीं रहा कि नमाज पढ़ते हुए व्यक्ति से अलग होकर चलूं। तूने मुझे ठोकर मार दी और प्रेम-दीवानी बनी सीधी निकल चली।

स्त्री बोली—"क्षमा अन्नदाता मुझसे असावधानी की जो महान् भूल हुई है उसके सम्बन्ध में आपके सन्तोष के लिए यह कहना चाहती हूँ—

> नर राची सूझी नहीं, तुम कब लख्यो सुजान।
> पढ़ कुरान बौरे भये नहीं राचा रहमान।।

"मैं तो नर रूप प्रियतम के वियोग से इतनी व्याकुल हो गई थी कि मार्ग के व्यक्तियों तक को न देख सकी। किन्तु आप तो सर्वशक्तिमान खुदा की भक्ति कर रहे थे फिर आपने मुझे कैसे देख लिया। आप नमाज पढ़ते-पढ़ते बूढ़े हो गए, परन्तु प्रभु के वास्तविक प्रेम की ज्योति आपके हृदय में नहीं जगी।

उस समय बादशाह को क्रोध तो बहुत आया हुआ था परन्तु स्त्री की बात को सुनकर उससे कोई उत्तर न बन पड़ा और मन ही मन में लज्जित हो गया।

११७

मुन्ने के बाबू हरे-हरे

एक बार कोई विवाहित स्त्री मंदिर मे कथा सुनने के लिए गई। उसने बड़े ही प्रेम से कथा सुनी और उस दिन व्रत भी रखा।

कथा के अन्त मे 'कृष्ण-कृष्ण, हरे हरे' का हरि-कीर्तन प्रारम्भ हुआ, तो वह सोचने लगी कि वह क्या बोले और क्या न बोले?

बात यह थी कि उसके पति का नाम कृष्ण था। हिन्दू महिला होने के कारण भला वह अपने पति के नाम का कीर्तन सभी के सामने कैसे करे? बहुत सोच-विचार के पश्चात् उसे एक युक्ति सूझी। वह प्रसन्नता से "कृष्ण-कृष्ण, हरे-हरे" के स्थान पर "मुन्ने के बाबू हरे-हरे" चिल्लाने लगी।

जब अन्य शिष्यों ने उसकी ध्वनि को सुना तो सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। और जब उससे इस प्रकार कीर्तन के शब्दों को बदल कर बोलने का कारण पूछा तो उसने कारण स्पष्ट बतला दिया।

वहाँ उपस्थित सभी भक्त उसकी अविद्या अज्ञानता एवं भोले स्वभाव को देखकर हँसने लगे।

११८

मातृ-भक्ति

गणपतराव भाऊ अनन्य मातृ-भक्त थे। वे सदा ही माता की आज्ञा का पालन करते थे। माता की आज्ञा का उल्लघन किसी भी कारण वश न हो, इसका वे सदा ही ध्यान रखते थे और अपने साथियो को भी ऐसा ही करने का परामर्श दिया करते थे।

एक दिन किसी जटिल प्रसंगवश उनको क्रोध आ गया और आवेग मे उन्होने माता को बहुत बुरा-भला कहा।

उनको कुछ ही घंटो के पश्चात् अपने इस कार्य पर बहुत ही पश्चाताप हुआ और मन मे बहुत ही दु खी हुए।

जब उनके मन को किसी प्रकार संतोष न हुआ, तो वे सीधे मन्दिर मे गए और अपनी जिह्वा को काटकर देव-प्रतिमा पर चढा दिया।

भविष्य मे वे माता को कुछ भी न कह सकें, इसलिए उन्होने सदा के लिए अपनी आवाज को ही बद कर लिया।

११९

सात्विक भोजन

एक बार बेबीलोन के बादशाह ने किसी दूसरे राज्य पर विजय प्राप्त की और वहाँ के बहुत से निवासियों को बन्दी बनाकर स्वदेश ले गया। उनमें से योग्य एवं उचित युवकों का चुनाव करके एक कालेज में भेज दिया जिससे वे शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके बादशाह की समुचित सेवा कर सकें।

बादशाह ने उन युवकों के साथ खानसामा की भी व्यवस्था कर दी जिसका प्रमुख कार्य युवकों की देख रेख करना एवं उनके लिए उचित भोजन की व्यवस्था करना था।

बादशाह की आज्ञानुसार युवकों को भोजन स्वादिष्ट एवं पौष्टिक प्राप्त हो इसके लिए खानसामा ने अच्छी व्यवस्था की और वह प्रतिदिन भिन्न-भिन्न प्रकार की मिठाइयाँ एवं स्वादिष्ट भोजन बनाकर उनको खिलाता था।

एक युवक जो कि सात्विक भोजन को पसन्द करता था, इस प्रकार के भोजन से सन्तुष्ट न हो सका और उसने स्वादिष्ट भोजन का त्याग कर दिया। उसने निश्चय कर लिया कि जब तक पूर्ण शुद्ध एव सात्विक भोजन प्राप्त नही होगा, तब तक भोजन नहीं करूँगा।

खानसामा ने बहुत प्रयत्न किया कि अन्य युवको की भाँति वह भी पौष्टिक भोजन ग्रहण करे, परन्तु उसने स्वीकार नही किया।

खानसामा ने उस युवक को अनेक प्रकार के भय दिखलाए और ऐसा न करने पर स्वास्थ्य के निर्बल हो जाने की आशका भी प्रकट की परन्तु युवक ने एक भी नही मानी।

अन्त मे खानसामा को युवक की बात स्वीकार करनी ही पडी और उसके लिए उसकी इच्छानुसार भोजन की व्यवस्था की गई।

कुछ दिनो के पश्चात् सभी विद्यार्थी एव खानसामा उसके उत्तम स्वास्थ्य एव निर्मल तथा प्रखर बुद्धि को देखकर दग रह गए।

सात्विक भोजन एव उज्ज्वल चरित्र के द्वारा उसने अपने स्वास्थ्य को भी सुन्दर बना लिया एव अध्ययन मे भी सर्वश्रेष्ठ रहा।

१२०

नौकरों को भी सेवा

संसार में सबसे बड़ा एवं भव्य मन्दिर 'सेण्ट पीटर टैम्पिल' माना जाता है। रोम नगर के इस टैम्पिल का निर्माण महान् शिल्पकार माइकेल एंजेलोनी की देख रेख में हुआ था।

वह प्रसिद्ध शिल्पकार नौकरों के प्रति बहुत ही दयाभाव रखता था। उसके यहाँ अरबीना नाम का एक नौकर था जिसने एंजेलोनी की लगातार छब्बीस वर्ष तक प्रामाणिकता एवं परिश्रम से सेवा की थी।

जब वह सेवा करता-करता वृद्ध हो गया और उसके प्रत्येक अंग शिथिल पड़ गए और शक्ति इतनी क्षीण हो गई कि उससे कुछ भी कार्य नहीं हो सकता था यहाँ तक कि उसकी मृत्यु भी निकट दिखाई देने लगी थी तो ऐसी अवस्था में माइकेल ने उसकी रात-दिन पूर्ण लगन के साथ सेवा की।

इस प्रकार अपने नौकर की सेवा करके उसने मानवता एव सहृदयता का ज्वलत उदाहरण प्रस्तुत किया। यही कारण है कि योरोप मे आज भी एक सुन्दर चित्र प्रचलित है, जिसमे अरवीना को मृत्यु-शैया पर पड़ा हुआ दिखलाया जाता है और उसके मालिक माइकेल एंजेलोनी (सेठ) को नम्रतापूर्वक उसकी सेवा करते हुए।

गरीबों की सेवा ही ईश्वर की सेवा है।

—वल्लभभाई पटेल

१२१

आत्मा सांसारिकता से दूर रहे

एक राजकुमारी थी जिसके पिता के यहाँ सभी प्रकार के साधन सहज-सुलभ थे। इस प्रकार राजकुमारी का बचपन बहुत ही सुखमय वातावरण में व्यतीत हुआ।

जब राजकुमारी का विवाह एक करोड़पति सेठ के पुत्र के साथ हुआ तो उसको ससुराल में भी प्रत्येक सम्भव विलासिता की सामग्री प्राप्त हुई। वहाँ पर भी उसे किसी वस्तु की कमी नहीं थी।

सेठ के लड़के ने राजकुमारी के लिए एक बहुत ही सुन्दर एवं भव्य महल बनवाया जिसमें प्रत्येक सुविधा एवं साज-सज्जा का ध्यान रखा गया। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के बहुमूल्य जेवरात भी बनवाए गए।

विवाह की खुशी मे नृत्य-सगीत आदि का भी आयोजन किया गया। राजकुमारी के उपयोग के लिए सम्पत्ति का द्वार खोल दिया गया। किन्तु राजकुमारी को अपने पिता के महल मे जो सुख प्राप्त था, वह यहाँ पर प्राप्त न हो सका।

जीवात्मा के सम्बन्ध मे जब हम विचार करते है तो स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा अपने मूल स्वभाव से अलग होकर जब इस ससार मे प्रवेश करती है, तो यहाँ पर अनेक सुख-साधनो एव प्रलोभनो आदि का आभास होता है और आत्मा को प्रलोभित करने के लिये सृष्टि अनेक सुख-साधनो के अपार भडार खोल देती है। परन्तु आत्मा को इस ससार मे वह सत्य एव स्थायी सुख प्राप्त नही होता है, जो कि अपने मूल स्वभाव मे स्थित होने पर उपलब्ध होता है।

सुधा बिन्दु

मस्तिष्क की शक्ति अभ्यास है धारण नहीं।

—पोप

मस्तिष्क स्वयं अपने में स्वर्ग को नरक और नरक को स्वर्ग में परिवर्तित कर सकता है।

—मिल्टन

सारी दुष्टता दुर्बलता है।

—मिल्टन

सांप के दांतों में विष रहता है, मक्खी के सिर में जहर रहता है, बिच्छू की पूंछ में जहर होता है, परन्तु दुर्जन एवं दुष्ट व्यक्ति के सारे शरीर में विष होता है।

—चाणक्य

संसार में वह व्यक्ति सबसे निकृष्ट एवं दिवालिया है, जिसने अपनी आत्म-शक्ति एवं आत्म-विश्वास को खो दिया है।